काव्यांजलि

माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश द्वारा इण्टरमीडिएट कक्षाओं
के लिए (कृषि वर्ग को छोड़कर) हिन्दी पद्य की
पाठ्य पुस्तक के रूप में निर्धारित

Name - Banarasi

नाम = बनारसी मिश्र

कक्षा 12-अ

विषय काव्यांजलि

बनारसी मिश्र

बनारसी मिश्र

राज्य सरकार के प्राधिकार से प्रकाशित

के इस बदलाव की जानकारी भी छात्रों को हो सके। हमारा विश्वास है कि युगबोध से सम्बद्ध होने पर ही हमारे विद्यार्थी भाषा और साहित्य को जीवित शक्ति के रूप में ग्रहण कर सकेंगे।

संक्षेप में, इन पुस्तकों के प्रणयन में हमारा प्रयास यह रहा है कि—

(१) छात्रों की ग्राहिका शक्ति की परिधि में आ सकने योग्य साहित्य के उत्कृष्ट अंश उनके अध्ययन का विषय बन सकें।
(२) पाठ्य सामग्री रोचक, वैविध्यपूर्ण, प्रेरक, बोधगम्य एवं सुरुचिपूर्ण हो।
(३) पुस्तकें एक ओर कक्षा ८ से क्रमागत हों और दूसरी ओर विश्वविद्यालय स्तर से भी जुड़ जाएँ।
(४) हाई स्कूल अथवा इण्टर के पश्चात शिक्षा से विरत हो जाने वाले छात्रों को भी अपने आप में पूर्ण आवश्यक पाठ्य वस्तु मिल जाए।
(५) भूमिका, टिप्पणियों और प्रश्न-अभ्यासों के द्वारा पाठ्य सामग्री का ऐसा अपेक्षित विश्लेषण हो जाय कि छात्र सस्ती टीकाओं की ओर न झुकें।

हम यह नहीं कह सकते कि इस प्रयास में हमें कहां तक सफलता मिली है; तथापि प्रयत्न यही रहा है कि सीमित अवधि में उपलब्ध साधनों का अधिकाधिक उपयोग करते हुए पुस्तक को उपयोगी एवं स्तरानुकूल बनाया जा सके। सामग्री-चयन, भूमिका, प्रश्न-अभ्यास आदि में सतत् परिमार्जन अपेक्षित है। एतदर्थ प्राप्त होने वाले सुझावों के लिए मैं अनुगृहीत होऊँगा।

जिन कृती लेखकों की रचनाएँ इन संकलनों में ली गयी हैं, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। परामर्शदाताओं और सम्पादकों का मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ, जिन्होंने सीमित अवधि में अत्यन्त मनोयोग से पाण्डुलिपि तैयार की। परिषद्-सचिव श्री रघुनन्दन सिंह तथा उनके सहकर्मियों, विशेष रूप से पाठ्य पुस्तक योजना से सम्बद्ध अतिरिक्त सचिव श्री गोविन्द वल्लभ पंत तथा उनके सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। श्री पंत और उनकी पाठ्य पुस्तक इकाई के अथक परिश्रम और कर्त्तव्यनिष्ठा के बिना यह गुरुतर कार्य इतने अल्प समय में इस सुचारुता से पूरा नहीं हो सकता था। हिन्दी समिति के सदस्यों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिन्होंने इन पुस्तकों के प्रणयन में अपना योगदान किया है।

डॉ० श्यामनारायण मेहरोत्रा
शिक्षा निदेशक एवं सभापति
माध्यमिक शिक्षा परिषद्
उत्तर प्रदेश

विषय-सूची

यह संकलन

हिन्दी के प्रमुख कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का यह संकलन अनेक उद्देश्यों से सम्प्रेरित है। सर्वप्रथम हमारा यह लक्ष्य रहा है कि इण्टर कक्षा का छात्र कबीर से लेकर आधुनिकतम रचनाकारों से यथा-संभव परिचित हो जाय। इसी दृष्टि से, कालक्रम से, प्रमुख कवियों की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ संकलित करते हुए मध्य युग के कुछ अन्य प्रतिनिधि कवियों- सेनापति, मतिराम, देव, घनानंद और पद्माकर की रचनाओं का समावेश 'विविधा' के अंतर्गत कर दिया गया है। सेनापति मध्य युग के एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रकृति को अपनी काव्यरचना का स्वतंत्र विषय बनाया है और विभिन्न ऋतुओं के बड़े ही सरस वर्णन उपस्थित किये हैं। मतिराम और देव उन कवियों की श्रेणी में आते हैं जिनमें उच्चकोटि के आचार्यत्व के साथ उसी स्तर की काव्य-प्रतिभा भी विद्यमान है। घनानन्द उत्तर मध्य युग के विशिष्ट कवि हैं, जिन्होंने किसी आश्रयदाता की रुचि का अनुसरण करते हुए काव्य रचना का बौद्धिक प्रयास नहीं किया, वरन मन की सहज प्रेरणा से कविताएं लिखी हैं। पद्माकर रीति युग की परवर्ती प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब काव्य-साधना सर्वथा रूढ़िबद्ध हो गयी थी। लेकिन पद्माकर सच्चे कवि थे, इसीलिए उनकी रचनाओं में युगानुकूल शब्दाडम्बर की प्रवृत्ति होने पर भी, प्रतिभा का सहज प्रस्फुटन मिलता है। आधुनिक काव्य के अंतर्गत भारतेन्दु से लेकर अज्ञेय तक की कविताओं के बाद एक और 'विविधा' का समावेश किया गया है—जिसमें नरेन्द्र शर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर और धर्मवीर भारती की रचनाएँ संकलित हैं। इस दूसरी 'विविधा' में व्यक्तिवादी, प्रगतिशील, प्रयोगवादी तथा नयी कविता के उदाहरण दिये गये हैं।

हिन्दी कवियों की रचनाओं का चयन करते हुए इस बात का बराबर ध्यान रहा है कि संकलित रचनाएँ छात्रों की मानसिक अवस्था, बौद्धिक क्षमता और ग्रहण-शक्ति के अनुरूप हों। इण्टर कक्षा के छात्र प्रायः पन्द्रह से सत्रह वर्ष की अवस्था के होते हैं। अतः उनकी अवस्था के अनुरूप सहज बोधगम्य रचनाएँ ही एकत्र की गयी हैं। किशोर मन वयःसन्धि की स्थिति में जो कुछ सोचता-विचारता है, जैसी इच्छाओं, आकांक्षाओं को अपने मन में सँजोता है, जैसे स्वप्न देखता और कल्पनाएँ करता है, उन्हीं के अनुरूप रचनाओं का संकलन यहाँ किया गया है। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि संकलित रचनाओं द्वारा युवा पीढ़ी के मन का संस्कार हो, उसके चरित्र का निर्माण हो, अपने देश की जीवंत परम्पराओं से उसका परिचय हो—उसके मन में सौन्दर्य-भावना का विकास हो और वह आधुनिक जीवन-मूल्यों के प्रति सजग हो सके।

काव्य का प्रधान उद्देश्य व्यापक जीवन—दृष्टि प्रदान करना है। आचार्य शुक्ल ने तभी तो लिखा है कि कविता शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह का साधन है। वह इस जगत के अनन्त रूपों, अनन्त व्यापारों और अनन्त चेष्टाओं के साथ हमारे मन की भावनाओं को जोड़ने का कार्य करती है। इसीलिए इस संकलन में जीवन की सभी प्रकार की परिस्थितियों—हर्ष, विषाद, क्रोध, उत्साह, भय, विस्मय आदि के चित्र हैं। किशोर मन स्वभावत: संवेदनशील होता है। प्रस्तुत रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन उसकी इस संवेदन-क्षमता का समुचित विकास करेगा और उसे जगत के विभिन्न क्षेत्रों में आत्मविश्वास के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देगा।

इस संकलन के आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिसमें पहले काव्य के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूपों का विश्लेषण किया गया है। बाह्य रूप के अन्तर्गत लय, छंद, तुक, शब्द-योजना, काव्य-भाषा, अलंकार आदि का विवेचन है। कविता के अन्तरंग का विश्लेषण करते हुए अनुभूति की तीव्रता एवं व्यापकता, कल्पना के विस्तार तथा भावों के उन्नयन आदि पर विचार किया गया है। उसके बाद काव्य के विभिन्न भेदों का निरूपण है। फिर हिन्दी कविता का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें सिद्धों और नाथों की रचनाओं से लेकर आज की कविता तक हिन्दी काव्य की विकास-परम्परा का निरूपण है। अन्त में, छात्रों के लाभ के लिए काव्य के अध्ययन और आस्वाद की प्रक्रियाओं का विवेचन किया गया है।

सामान्यत: क्रम यह रहा है—आरंभ में कवि विशेष का परिचय है, फिर उसकी रचनाएँ हैं और अन्त में प्रश्न-अभ्यास। सम्भावित प्रश्नों और अवतरणों की व्याख्या का अभ्यास कराने से छात्रों की लेखन-शक्ति और रचनात्मक प्रतिभा का विकास होगा। पुस्तक के अन्त में, पाठ्य क्रम में निर्धारित रसों, छंदों और अलंकारों का परिचय दिया गया है। इसके बाद टिप्पणियाँ हैं जिनमें विभिन्न रचनाओं के आवश्यक संदर्भ दिये गये हैं, विशिष्ट शब्दों के अर्थ और भाव स्पष्ट किये गये हैं तथा अन्त:कथाओं पर प्रकाश डाला गया है।

हमें आशा है कि हमारा यह प्रयास छात्रों और अध्यापकों, दोनों, को रुचिकर होगा।

भूमिका

काव्य का स्वरूप

साहित्य भाषा के माध्यम से जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यंजना हमें दो रूपों—गद्य और पद्य—में मिलती है। गद्य की प्रमुख विधाएँ हैं—कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, जीवनी आदि। पद्य गद्य का विपक्षी रूप है और छंद में बँधी रचना के लिए प्रयुक्त होता है। कविता पद्य से ऊँची स्थिति की परिचायक है और रचना के अन्तःसौन्दर्य का बोध कराती है। गद्य और कविता का अंतर प्रायः कविता की छंदोबद्धता, लय और तुक के आधार पर किया जाता है। पर यह अंतर कुछ सीमा तक ही सच है। बहुधा गद्य में कविता के गुण मिल जाते हैं और लय और तुक से युक्त छंदोबद्ध रचना भी नीरस होने पर गद्य जैसी प्रतीत हो सकती है। गद्य और कविता में अन्तर उनके बाह्य रूप के आधार पर उतना नहीं होता, जितना उनके आंतरिक तत्त्वों के कारण। कविता के स्वरूप को समझने के लिए हमें उसके बाह्य और आंतरिक दोनों रूपों पर विचार करना चाहिए।

कविता का बाह्य रूप

लय

कविता के बाह्य रूप में सबसे प्रधान तत्त्व उसकी लय है। भाषा के प्रवाह में नियमित उतार-चढ़ाव से लय का जन्म होता है। लय एक प्रकार से हमारे जीवन का आधार है। सृष्टि में सभी काम लयबद्ध रूप से होते हैं। समय पर सूर्य निकलता है और अस्त होता है। ऋतुएँ अपने-अपने क्रम से पृथ्वी पर आती और जाती हैं। वृक्षों और पशु-पक्षियों का जीवन भी क्रमानुसार चलता है। मनुष्य का जीवन यद्यपि उतना क्रमबद्ध नहीं है तथापि उसके हृदय की धड़कन और उसका श्वास-प्रश्वास उसके जीवन को लय में बांधे रहता है। यह लय भाषा में भी प्रकट होती है। गद्य की भाषा में भी कुछ लय होती है, परन्तु कविता में लय का प्रयोग विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। कविता का आनन्द कुछ सीमा तक उसकी लय पर भी निर्भर है। कविता की यह लय शब्दों को एक विशेष क्रम में सँजोने के कारण आती है। इस संकलन से लय के कुछ सुन्दर उदाहरण देखें।

कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो। (तुलसी)
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो।

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरतिबेलि बयी है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लयी है। (केशव)

छूटत कमान बान बन्दूकरु कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट में। (भूषण)

जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत की ज्वालाओं का मूल—
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल। (प्रसाद)

ऊपर की पंक्तियों में यदि किसी भी शब्द को इधर से उधर कर दें तो कविता का अर्थ वही रहने पर भी उसकी लय बाधित हो जायगी और उसकी संगीतात्मकता और सौष्ठव में कमी आ जायगी।

आधुनिक कविताएँ प्रायः छंदोवद्ध नहीं होतीं और न तुकांत ही, पर उनमें शब्द और अर्थ के आधार पर लय का ध्यान अवश्य रखा जाता है।

तुक

आदि काल से ही हिन्दी कविता अधिकतर तुकांत होती रही है। इस कारण वह गेय भी रही है। तुकान्त कविता को स्मरण करना और उसे सभी तक पहुँचाना सरल होता है। दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, कुंडलिया आदि छंद तुकान्त होने से जनता में बहुत लोकप्रिय रहे हैं। भक्ति के पद भी तुकान्त होने से गेय हो गये हैं।

कविता में तुक का होना अनिवार्य नहीं है। संस्कृत की प्रायः समस्त कविताएँ अतुकांत हैं पर लयबद्ध और छंदोवद्ध हैं। हिन्दी में भी आजकल अतुकांत कविता लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

छंद

आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'छंद वास्तव में बँधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढाँचों का योग है जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है। लय-छंद स्वर के चढ़ाव-उतार, स्वर के छोटे-छोटे ढाँचे ही हैं जो किसी छंद के चरण के भीतर न्यस्त रहते हैं।' छंद का निर्णय कविता के एक चरण या पंक्ति में वर्णों और मात्रा की गणना के आधार पर होता है। संस्कृत के सभी श्लोक किसी-न-किसी छंद में निबद्ध हैं। मध्य युग तक की सम्पूर्ण हिन्दी कविता विभिन्न छंदों में लिखी गयी है जिनमें से दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त और कुंडलिया अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

आधुनिक कविता के बाह्य रूप में अनेक परिवर्तन आये हैं और अब प्राचीन छंदों का प्रयोग लगभग समाप्त हो गया है। कवि अब अपनी आवश्यकता के अनुसार अनेक नये छंद बना लेते हैं, जिनके वर्णों और मात्राओं के संयोजन में निश्चित क्रम होता है।

प्राचीन छंदों के विषय में कुछ जानकारी इस पुस्तक के परिशिष्ट में दी गयी है।

शब्दयोजना

वैसे तो प्रत्येक साहित्यकार शब्दों के प्रयोग में बहुत सावधानी बरतता है पर कवि के लिए शब्दों का सही चयन और संयोजन बहुत ही आवश्यक है। कविता का सौन्दर्य अधिकतर उसके शब्दों पर ही निर्भर करता है। कवि प्रायः इस प्रकार शब्दों का प्रयोग करता है कि उनके सामान्य अर्थ से परे कुछ विशिष्ट अर्थ भी उभरे। इसी दृष्टि से भारतीय काव्य शास्त्र में तीन शब्द शक्तियों—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना—का निरूपण है। अभिधा सामान्य अर्थ का बोध कराती है। लक्षणा के सहारे शब्द सामान्य अर्थ को छोड़कर उससे संबंधित अर्थ का बोध कराता है, और व्यंजना दोनों ही अर्थों से विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराती है। वस्तुतः जिस कविता में व्यंजना की बहुलता होती है, उसी का महत्त्व अधिक होता है। शब्दों के संयोजन द्वारा ही कविता में नाद-सौन्दर्य भी उत्पन्न होता है। एक उदाहरण लें—

पपीहों की वह पीन पुकार।
निर्झरों की भारी झरझर॥
झींगुरों की झीनी झनकार।
घनों की गुरु गम्भीर गहर॥
बिन्दुओं की छनती छनकार।
दादुरों के वे दुहरे स्वर॥
हृदय हरते थे विविध प्रकार।
शैल पावस के प्रश्नोत्तर॥ (पन्त)

इन पंक्तियों में अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि अलंकारों का प्रभाव विशिष्ट शब्दों के प्रयोगों पर ही निर्भर है।

चित्रात्मक भाषा

कवि भाषा को अपने भावों का वाहन बनाता है। वह अपने भाव प्रकाशन के लिए प्रायः चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करता है। वह पाठक के मन में शब्दों के द्वारा ऐसे बिम्ब जगाता है जिनसे कवि का कथन प्रभावपूर्ण ढंग से हृदयंगम हो जाता है। चित्रात्मक भाषा के प्रयोग से थोड़े से शब्दों में बहुत बात कही जा सकती है और उसका प्रभाव भी

अधिक गहरा होता है। जनसाधारण में कविता की लोकप्रियता का एक कारण उसकी चित्रात्मक भाषा भी है। इस पुस्तक की कविताओं से चित्रात्मक भाषा के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं: —

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पच्छी फिरि जहाज पर आवै। (सूरदास)

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है। (तुलसी)

बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगर्‍यो बसंत है। (पद्‌माकर)

कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार। (प्रसाद)

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रान्त क्लांत निश्चल ! (पंत)

अलंकार

कविता में अलंकार का प्रमुख स्थान है। कुछ आचार्यों के अनुसार तो अलंकार के बिना कविता संभव ही नहीं है। जिस प्रयोग से अभिव्यक्ति में विशेष सौन्दर्य और अर्थवत्ता आ जाती है उसे अलंकार कहते हैं। कवि कभी भाव को अधिक उत्कर्ष देने के लिए किसी वस्तु के आकार या गुण को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाता है, कभी उसके रूप या गुण को समान रूप या धर्म वाली वस्तु के मेल में रखता है, कभी किसी बात को घुमा-फिरा कर कहता है। ये सब अलंकार के ही भिन्न-भिन्न विधान हैं। जो अलंकार किन्हीं विशेष शब्दों के प्रयोग पर आश्रित होते हैं उन्हें शब्दालंकार कहते हैं। अर्थ में सौन्दर्य उत्पन्न करने वाले अलंकारों को, जो किन्हीं विशिष्ट शब्दों पर आधारित नहीं होते, अर्थालंकार कहते हैं। इन अलंकारों के अनेक भेद और उपभेद हैं। मध्य युग में अनेक आचार्यों ने संस्कृत की परम्परा का अनुसरण करके अलंकारों की व्याख्या की और उनके उदाहरण के रूप में छंदों की रचना की। रामदहिन मिश्र ने अलंकारों को तीन श्रणियों में बाँटा है—

१. अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में आने वाले—जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि।
२. वाक्य वक्रता के रूप में आने वाले—जैसे व्याजस्तुति, समासोक्ति आदि और

३. वर्ण विन्यास के रूप में आने वाले—जैसे अनुप्रास आदि।

सभी अवस्थाओं में अलंकारों का उद्देश्य भावों को तीव्रता प्रदान करना होता है। कुछ प्रमुख अलंकारों का परिचय इस पुस्तक के परिशिष्ट में दिया गया है।

कविता के आन्तरिक तत्त्व

अभी तक हमने कविता के बाहरी रूप पर विचार किया है। सही तौर पर कविता को पहचानने के लिए ये बातें काफी हैं पर केवल इनसे कविता की आत्मा को नहीं समझा जा सकता। वास्तव में गद्य और कविता में अन्तर उनके बाहरी रूप के कारण नहीं अपितु उनकी आत्मा में भिन्नता के कारण किया जाता है। काव्य का प्रमुख तत्त्व भाव है। भाव से रहित शब्दाडम्बर मात्र पाठक के हृदय को विभोर नहीं कर सकता। कविता के इस भावतत्त्व, उसकी आत्मा, को समझने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

अनुभूति की तीव्रता

गद्य की अपेक्षा कविता में अनुभूति की तीव्रता बहुत अधिक होती है। इसीलिए कहा जाता है कि गद्य मस्तिष्क की वस्तु है और कविता हृदय की। वाल्मीकि के विषय में प्रसिद्ध है कि एक बार जब उन्होंने एक शिकारी द्वारा क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक को मारे जाते हुए देखा तो उस घटना से क्षुब्ध होकर उनके मुख से शिकारी के प्रति शाप के रूप में कविता का पहला श्लोक फूट पड़ा था। सामान्य जनों की अपेक्षा कवि बहुत अधिक संवेदनशील होता है। जीवन के सुख-दुख के प्रति उसकी प्रतिक्रिया कविता के रूप में फूट पड़ती है—

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान। (पंत)

अपनी रचना के द्वारा कवि पाठकों और श्रोताओं के मन में वैसी ही अनुभूति जगाना चाहता है जैसी कि उसे कविता रचते समय हुई थी। जो कविता इस कार्य को जितनी सफलता के साथ कर सकती है, वह उतनी ही अच्छी कविता मानी जाती है।

अनुभूति की व्यापकता

कविता में अनुभूति की तीव्रता या गहराई के साथ व्यापकता भी होती है। कवि के हृदय में वे वस्तुएँ, दृश्य या घटनाएँ भी भाव जगा जाती हैं, जिनपर सामान्य व्यक्तियों का ध्यान भी नहीं जाता। कवि की दृष्टि बड़ी पैनी होती है। सूखे पेड़ में

शायद ही किसी को सौन्दर्य दिखायी दे। पर अच्छा कवि उस पेड़ को ही आधार बनाकर बहुत सुन्दर कविता की सृष्टि कर सकता है। इसी प्रकार अन्य व्यक्तियों और प्राणियों के दुख से भी कवि दुखी होता है और सहृदय पाठकों के मन में उनके प्रति सहानुभूति जगा सकता है। कविता के अध्ययन से आंतरिक जीवन के अनेक पक्ष हमारे सामने आते हैं और हमारी अनुभूति को व्यापक बनाते हैं।

कल्पना की उड़ान

कवि अपनी बात सामान्य भाषा में न कहकर कुछ ऐसी शब्दावली में कहता है जो हमारी कल्पना शक्ति को जगा देती है। उसके कहने का ढंग ही वास्तव में कविता की संजीवनी शक्ति है। प्राचीन आचार्यों ने कवि की कथन शैली को इसीलिए बहुत महत्त्व-पूर्ण माना है। कवि के कथन की भंगिमा ही प्रायः कल्पना अर्थात मन की आत्मिक शक्ति को स्वतः उद्‌बुद्ध करती है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सौन्दर्य कल्पना पर ही आधारित है। कवि प्रायः नयी-नयी उद्‌भावनाएँ करता है। इसीलिए कहा जाता है—'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि'—पर कल्पना की यह उड़ान हृदय की अनुभूति पर आधारित हो तभी वह सार्थक है। कोरी कलाबाजी पर आधारित कल्पना कविता के रस को भंग करती है, पुष्ट नहीं।

रसात्मकता और सौन्दर्य बोध

रस को काव्य की आत्मा कहा गया है। शब्द और अर्थ कविता के शरीर हैं और रस प्राण। किसी भी अच्छी कविता को पढ़कर जो आनन्दमयी अनुभूति हमारे अन्दर जगती है वही रस है। रसास्वादन ही काव्याध्ययन का परम ध्येय है। कविता के दो पक्ष होते हैं—भाव पक्ष और विभाव पक्ष। "किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति विशेष अवस्थाओं में किसी की जो मानसिक स्थिति होती है उसे भाव कहते हैं। जिस वस्तु या व्यक्ति के प्रति वह भाव व्यक्त होता है वह विभाव कहा जाता है।" विभाव दो प्रकार के होते हैं—(१) आलम्बन विभाव और (२) उद्‌दीपन विभाव। भाव, विभाव और अनुभाव के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है। कविता के विषय की दृष्टि से रस के वीर, शृंगार, शान्त, रौद्र आदि नौ भेद माने गये हैं जिनके विषय में कुछ संकेत पुस्तक के परिशिष्ट में दिये गये हैं। कविता सूचना या उपदेश देने के लिए नहीं लिखी जाती। उसका प्रमुख उद्‌देश्य शाब्दिक माध्यम से आनन्द की अनुभूति कराना है। जो रचना ऐसी अनुभूति करा सकती है, वही कविता है। इसीलिए कहा गया है—रसात्मकं वाक्यं काव्यम्।

कविता के अनुशीलन से सौन्दर्यानुभूति से ओत-प्रोत होने वाला व्यक्ति जीवन के अन्य पक्षों में भी सौन्दर्य देखने लगता है। प्रकृति-सौन्दर्य के विषय में कोई अच्छी कविता पढ़कर हमारा ध्यान, प्रकृति में छिपे हुए सौन्दर्य की ओर जाने लगता है। इस प्रकार कविता हमारे मन में जीवन और जगत के प्रति सौन्दर्यानुभूति जगाती है।

आधुनिक युग में 'व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के विकास के कारण सौन्दर्य को वस्तु या दृश्य में नहीं, द्रष्टा की सौन्दर्यबोधात्मक चेतना में अवस्थित माना जाने लगा है। अतः आज का कवि असुन्दर और लघु में सुन्दर और विराट् का दर्शन करता है।' जीवन और जगत का कोई विषय उसके लिए असुन्दर और अग्राह्य नहीं है। वह प्रकृति, मानव आदि के साथ चींटी, छिपकली, चूहों आदि पर भी उसी सहज भाव से रचना करता है। 'धूल की ढेरी' में उसे 'मधुमय गान' सुनायी पड़ता है।

भावों का उदात्तीकरण

यद्यपि कविता उपदेश देने के लिए नहीं लिखी जाती तथापि उसका एक प्रमुख उद्देश्य भावों को उदात्तबनाना अवश्य होता है। जीवन के घात-प्रतिघातों और मन की विभिन्न उलझनों को कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक को अनायास ही कुटिलता, क्रूरता, दम्भ और नीचता आदि के प्रति वितृष्णा हो जाती है और इसके विपरीत सद्गुणों के लिए आकर्षण हो जाता है। भावों एवं विचारों की उच्चता से काव्य में गरिमा भी आती है क्योंकि सद्विचारों की अभिव्यक्ति स्वतः कविता को ऊँचा उठा देती है। इसीसे बहुधा कवि महापुरुषों के जीवन को आधार बनाकर महाकाव्य रचते हैं। तुलसीदास का रामचरितमानस इसका सुन्दर उदाहरण है। मूक प्रकृति की शोभा या अबोध शिशु के सौन्दर्य की प्रशंसा में लिखी गयी पंक्तियाँ पाठक के मन में अचेतन रूप से यह प्रभाव छोड़ जाती हैं कि सर्वथा सरल और सहज जीवन भी आकर्षक और आनन्द की भावना जगाने में समर्थ हो सकता है। कविता की प्रेरणाप्रद पंक्तियाँ निराशा में डूबते लोगों का सहारा बन जाती हैं। ऐसी बहुत-सी पंक्तियाँ जनता के बीच सूक्तियों के रूप में प्रचलित हो जाती हैं।

कई बार भावों में उदात्तीकरण और परिवर्तन की यह प्रक्रिया सामूहिक आन्दोलन का रूप ले लेती है। भक्तिकाल का काव्य और आधुनिक युग में प्रगतिवादी कविताएँ इसी प्रकार के आन्दोलनों की उपज हैं।

काव्य के भेद

काव्य दो प्रकार के होते हैं—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। नाटक, एकांकी आदि दृश्य काव्य हैं। दृश्य काव्य का रंगमंच पर अभिनय किया जाता है और उसका पूरा आनन्द उसे देखकर ही मिलता है। इसीलिए वे दृश्य काव्य कहलाते हैं। अन्य प्रकार के काव्य श्रव्य काव्य कहे जाते हैं क्योंकि उनका मुख्य आनन्द सुनकर प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य के दो मुख्य भेद हैं— प्रबंध और मुक्तक। प्रबंध काव्य में धारावाहिक कथा होती है और उसमें किसी घटना या व्यापार का काव्यात्मक वर्णन रहता है। इसके विपरीत मुक्तक रचना में प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होता है। मुक्तक रचनाओं में कथाओं की सूत्रबद्धता नहीं होती

परन्तु प्रत्येक छंद रसोद्रेक करने में समर्थ होता है। 'रामचरितमानस', 'कामायनी', 'जयद्रथवध', 'हल्दीघाटी' प्रबंध काव्य हैं। सूर और मीरा के पद, बिहारी और रहीम के दोहे, गिरधर की कुण्डलियाँ तथा विभिन्न विषयों पर आधुनिक कवियों की रचनाएँ मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आती हैं। मुक्तक रचनाओं के प्राचीन आचार्यों ने कई भेद किये हैं परन्तु मुख्य रूप से हम उनको दो वर्गों में बाँट सकते हैं एक वे जो संगीत प्रधान होते हैं, जैसे सूर और मीरा के पद और दूसरे वे जो सुपाठ्य होते हैं।

प्रबंध काव्य के भी दो भेद हैं—महा काव्य और खंड काव्य।

महा काव्य—महा काव्य की कथा में जीवन की सर्वांगीण झाँकी होती है और जीवन के विविध पक्षों का एक संश्लिष्ट चित्र रहता है। उसका विषय भी महान होता है। कई पात्र होते हैं—स्त्री भी और पुरुष भी। पात्रों में एक नायक होता है। अन्य पात्र नायक के उद्देश्य से ही संबंधित होते हैं—सहायक अथवा विरोधी। कथावस्तु के पाँच प्रमुख अंग होते हैं—आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए नायक प्रयत्न करता है। उसमें कुछ बाधा आती है और अंत में बाधाओं पर विजय पाकर नायक सफल होता है कथावस्तु का स्थूल रूप प्राय: सब महाकाव्यों में यही रहता है। हमारे महाकाव्य सुखांत ही होते हैं। कथानक किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना या जीवन-दर्शन से संबंधित होता है। नायक धीरोदात्त गुणों से समन्वित होता है। महाकाव्य में श्रृंगार, वीर, करुण अथवा शांत रस की प्रधानता होती है, यों स्थान-स्थान पर उसमें अनेक रस रहते हैं। कथा में एक प्रकार से अनेक रस पल्लवित होते हैं। जहाँ कथा ठहरती जाती है। कथासूत्र में ये पल्लव जुड़े रहते हैं, जैसे कि रामचरितमानस में रामजन्म, सीता-स्वयंवर, रामवनवास, चित्रकूटसभा, जानकीहरण, सुग्रीवमैत्री, राम-रावण संग्राम इसी प्रकार के स्थल हैं।

महा काव्य प्राय: सर्गों अथवा सोपानों में विभाजित होता है। उसमें वन, पर्वत वसन्त, वर्षा आदि के सुन्दर प्राकृतिक वर्णन रहते हैं। आरंभ में मंगलाचरण होता है। प्रत्येक सर्ग के आरंभ में भी मंगलाचरण हो सकता है। चन्दवरदायी कृत 'पृथ्वीराजरासो' हिन्दी का प्राचीनतम महाकाव्य है। जायसी कृत 'पदमावत',तुलसीदास का'रामचरितमानस', हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास', प्रसाद कृत 'कामायनी', दिनकर की 'उर्वशी', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य हैं। वर्तमान काल में महाकाव्य के प्राचीन प्रतिमान परिवर्तित हुए हैं। इतिहास-प्रसिद्ध या महापुरुष के स्थान में मानव-जीवन की कोई घटना या समाज का कोई भी व्यक्ति महाकाव्य का विषय हो सकता है।

खण्ड काव्य—महा काव्य में जहाँ सम्पूर्ण जीवन की झाँकी रहती है वहाँ खण्ड काव्य में जीवन के किसी एक पक्ष का चित्रण होता है। उसकी कथा संश्लिष्टि प्रधान न होकर अन्विति प्रधान होती है। किसी एक घटना या व्यापार का उसमें चित्रण

होता है । आकार में वह महा काव्य से काफी छोटा होता है और उसकी कथा में भी तीव्रता रहती है अर्थात वह अपेक्षाकृत संवेग रूप से अग्रसर होती है । खण्ड काव्य, महा काव्य का संक्षिप्त रूप नहीं है । महा काव्य के अनेक कथा-प्रसंगों पर अलग-अलग खंड काव्य लिखे जा सकते हैं जैसे 'जय हनुमान','जानकीमंगल' ,'पार्वतीमंगल'।खंड काव्य में पात्रों की संख्या भी कम होती है और प्रकृति-चित्रण भी पृष्ठभूमि के रूप में संक्षिप्त ही होता है । 'जयद्रथवध','सुदामा-चरित्र', 'गंगावतरण', 'पथिक', 'सिद्धराज','द्वापर' 'हिडिंबा' आदि खण्ड काव्य हैं । कथावस्तु की संश्लिष्टता की दृष्टि से महा काव्य नाटक और उपन्यास के समीप है और खंड काव्य एकांकी तथा कहानी के समीप ।

मुक्तक — जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है,मुक्तक रचनाओं के भी हम दो भेद कर सकते हैं । एक वे जो मुख्य रूप से गेय हैं जैसे सूर, मीरा और कबीर के पद अथवा गुरु ग्रंथ साहब के 'सलोक' । इन रचनाओं में संगीत की प्रधानता होती है और बड़ी ही कोमल और मार्मिक पदावली होती है । गेय पदों के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर लिखी हुई छोटी-छोटी विचार प्रधान रचनाएँ भी मुक्तक काव्य की श्रेणी में आती हैं। किसी एक विषय पर चार-छ: छंदों का समूह भी मुक्तक की श्रेणी में माना गया है,जैसे रत्नाकर का 'भीष्माष्टक'' पंतजी का 'पतझड़',निरालाजी का 'भिक्षु,''दीन', 'वह तोड़ती पत्थर' एवं 'तारसप्तक' की रचनाएँ मुक्तक श्रेणी में आती हैं । इस प्रकार की मुक्तक रचनाओं में एक प्रकार का जीवन-दर्शन रहता है जैसे कि बालकृष्ण राव की 'फिर क्या होगा इसके बाद' में हम अंत में देखते हैं—'है अनन्त का प्रश्न तत्त्व यह फिर क्या होगा इसके बाद ।'

हिन्दी काव्य का इतिहास

प्रत्येक भाषा का साहित्य उस भाषा को बोलने वाले समाज का सजीव चित्र होता है । साथ ही वह उस समाज को बदलने और उसको प्रगति प्रेरणा देने का समर्थ साधन भी होता है । उस समाज को पृष्ठभूमि में रख कर ही उस भाषा के साहित्य के इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है । साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ,विभिन्न काव्य-धाराएँ एवं विभिन्न युग एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रियाकरते हुए अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होते हैं । इसी दृष्टि से हम हिन्दी साहित्य के गतिशील रूप का संक्षिप्त सर्वेक्षण इन पंक्तियों में करेंगे ।

हिन्दी साहित्य मूलत: खड़ी बोली के परिनिष्ठित रूप का साहित्य है, पर इसकी परिधि में मैथिली, अवधी,ब्रज, राजस्थानी जैसी साहित्यिक बोलियों का साहित्य भी आ जाता है । इन सभी बोलियों में हमें एक जैसी ही अनुभूति और विचारधारा का साहित्य मिलता है । समय-समय पर साहित्य के विषय बदलते रहे और विभिन्न युगों

में हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ प्रधान रहीं। वीरगाथा काल में राजस्थानी, पूर्वमध्यकाल में अवधी तथा उत्तरमध्यकाल में ब्रजभाषा की प्रधानता रही। आधुनिक युग मूलतः खड़ी बोली का युग है।

पिछली दस सताब्दियों में हरियाणा प्रान्त से लेकर मध्य-प्रदेश तक तथा राजस्थान से विहार प्रदेश तक का समाज जो कुछ अनुभव करता रहा है, जो कुछ भी सोचता रहा है, जो उसकी आशा-निराशा और आकांक्षाएँ रही हैं, उस सबकी अभिव्यक्ति ही हिन्दी साहित्य है। इस साहित्य में भारत की अखंड़सामाजिक संस्कृति के साथ ही जनपदीय लोक-संस्कृतियों का प्रतिविम्ब भी है।

अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा है। सातवीं शती के उत्तरार्द्ध से अपभ्रंश से विकसित होती हुई हिन्दी भाषा का साहित्य उपलब्ध होने लगता है। भाषा के स्वरूप में परिवर्तन होने पर हिन्दी के आदिकाल में अपभ्रंश साहित्य की प्रवृत्तियाँ चलती रही हैं। अतः अपभ्रंश साहित्य का सामान्य लेखा-जोखा हिन्दी साहित्य की गतिविधि समझने के लिए आवश्यक है। अपभ्रंश में साहित्य की बहुविध प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं—धर्म, श्रृंगार, भक्ति भावना तथा अनेक प्रकार की रहस्यमय साधनाएँ इस साहित्य के प्रमुख विषय रहे हैं। एक ओर जैन आचार्यों और कवियों का धर्म एवं नीति परक साहित्य मिलता है और दूसरी ओर बौद्ध सिद्धों की रहस्यमय एवं गुह्य साधना की वाणी। बौद्ध सिद्धों,नाथों एवं जैन आचार्यों की रहस्य गुह्य-योग-साधना और धार्मिक सिद्धान्तों की रचनाएँ मूलतः साहित्येतर हैं,पर उस युग के साहित्य को समझने के लिए अपरिहार्य हैं। नाथ साहित्य में भक्ति का पूर्वाभास भी होने लगता है। इस काल में कविता का प्रवाह अवरुद्ध नहीं था। जैन कवियों की रचनाएं कविता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। श्रृंगार रस का अच्छा विरह काव्य भी इस युग में मिलता है। 'प्रबन्ध चितामणि','कुमारपालचरित' जैसी महान रचनाएँ और पुष्पदन्त, हेमचन्द्र जैसे श्रेष्ठ कवि भी इसी युग में हुए। इस प्रकार मूल हिन्दी साहित्य वस्तुतः अपभ्रंश साहित्य से ही विकसित हुआ है।

हिन्दी साहित्य का नामकरण तथा काल-विभाजन सामान्यतः इस प्रकार किया गया है—

आदि काल—सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक।
भक्ति काल—चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक।
रीति काल—सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक।
आधुनिक काल—उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक।

आदि काल

नामकरण

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक और इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल का समय सन ९९३ ई० से १३१८ ई० तक माना था और उसे वीरगाथा काल की संज्ञा दी थी; क्योंकि वे इस अवधि में वीरगाथाओं की रचना-प्रवृत्ति को प्रधान मान कर चले थे। किन्तु परवर्ती विद्वान ७६९ ई० से चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक की अवधि को हिन्दी साहित्य का आदिकाल ही कहते हैं। आदिकाल ऐसा नाम है, जिसे किसी न किसी रूप में सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। भाषा की दृष्टि से हम इस काल के साहित्य में हिन्दी के आदि रूप का बोध पा सकते हैं तो भाव की दृष्टि से हम इसमें भक्तिकाल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के प्रारंभिक बीज खोज सकते हैं। इस काल की आध्यात्मिक, शृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है।

अधिकांश विद्वान हिन्दी का प्रथम कवि सरहपा को मानते हैं जिनका रचनाकाल ७६९ ई० से प्रारंभ होता है। अत: हिन्दी साहित्य के आरंभ की सीमा आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानी जाती है। दूसरी ओर विद्यापति को भी आदि काल के अन्तर्गत माना जाता है, इनका रचना-काल १३७९ ई० से १४१८ ई० तक है। इस दृष्टि से आदि काल की अंतिम सीमा १४१८ ई० निर्धारित की जा सकती है, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि भक्ति काल में जिन प्रवृत्तियों का विकास हुआ, उनकी भूमिका विद्यापति के पूर्व ही पूर्ण हो चुकी थी। अत: विद्यापति को भक्ति काल में रखकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य को आदि काल की अन्तिम सीमा मानना ही समीचीन होगा।

साहित्य मानव-समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। इसलिए आदिकालीन साहित्य के इतिहास को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को जानना अपेक्षित है।

राजनीतिक परिस्थिति

हिन्दी साहित्य का आदिकाल वर्द्धन-साम्राज्य की समाप्ति के समय से प्रारंभ होता है। अन्तिम वर्द्धन-सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय से ही सिन्ध प्रान्त पर अरबों के आक्रमण आरम्भ हो गये थे। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद भारत की संगठित सत्ता खण्ड-खण्ड हो गयी। तदनन्तर राजपूत राजा निरन्तर युद्धों की आग में जल गये और अन्ततः एक विशाल इस्लाम साम्राज्य की स्थापना हो गयी। ईसा की आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति हिन्दू-सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लामसत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की कहानी है। आदिकाल इसके

युद्ध-प्रभावित जीवन में कहीं भी संतुलन नहीं था। जनता पर विदेशी आक्रांताओं के अत्याचारों के साथ-साथ युद्धकामी देशी राजाओं के अत्याचारों का क्रम भी बढ़ता चला गया। वे परस्पर लड़ने लगे और प्रजा पीड़ित होने लगी। पृथ्वीराज चौहान, जयचंद, परमर्दिदेव आदि की पारस्परिक लड़ाइयाँ, अन्तहीन कथा बनती गयीं। विदेशी-शक्तियों के आक्रमण का प्रभाव मुख्यत: पश्चिमी भारत और मध्यप्रदेश पर ही पड़ा था। यही वह क्षेत्र था, जहाँ हिन्दी भाषा का विकास हो रहा था। अत: इस काल का समस्त हिन्दी साहित्य आक्रमण और युद्ध के प्रभावों की मन:स्थितियों का प्रतिफलन है।

धार्मिक परिस्थिति

ईसा की छठी शताब्दी तक देश का धार्मिक वातावरण शांत था। किन्तु सातवीं शताब्दी के साथ देश की धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन आरम्भ हुआ। इस समय आलम्बार और नायम्बार सन्त दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर धार्मिक आन्दोलन लाये। बौद्ध धर्म का पतन प्रारम्भ हो गया था। शैव और जैन मत आगे बढ़ने की होड़ में परस्पर टकराने लगे थे। देशव्यापी धार्मिक अशांति के इस काल में बाहरी धर्म इस्लाम का भी प्रवेश हो रहा था। अशिक्षित जनता के सामने अनेक धार्मिक राहें बनती जा रही थीं। बौद्ध सन्यासी यौगिक चमत्कारों का प्रभाव दिखा रहे थे। वैदिक एवं पौराणिक मतों के समर्थक खंडन-मंडन की भूल-भुलैयों में पड़े थे। उधर जैन धर्म पौराणिक आख्यानों को नये ढंग से गढ़कर जनता की आस्थाओं पर नया प्रभाव जमा रहा था। आदि काल की धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम तथा असंतुलित थीं। कवियों ने इसी स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं शृंगार का साहित्य लिखा।

सामाजिक परिस्थिति

तत्कालीन राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देश की सामाजिक परिस्थितियों पर भी गहरा प्रभाव पड़ रहा था। जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश होती जा रही थी। युद्धों के समय उसे बुरी तरह पीसा जाता था। समाज के उच्च वर्ग में विलासिता बढ़ गयी थी। निर्धन वर्ग श्रमिक था।अंधविश्वास जोरों पर था।साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा था। योगियों का गृहस्थों पर आतंक छाया हुआ था। जनता दुर्भिक्ष, युद्ध और महामारियों का निरन्तर शिकार हो रही थी। सामाजिक परिस्थिति की इस विषमता में हिन्दी के कवियों को जनता की स्थिति के अनुसार काव्य-रचना की सामग्री जुटानी पड़ी।

सांस्कृतिक परिस्थिति

आदि काल भारतीय और इस्लाम इन दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास विकास की गाथा है। इस काल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है वह परम्परागत

गौरव से विच्छिन्न तथा मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है। तत्कालीन जन-जीवन के स्वरूप में इस संस्कृति की व्यापक छाप मिलती है। उत्सव,मेले,वेश-भूषा, आहार,विवाह,मनोरंजन आदि सब में मुस्लिम रंग मिल गया है। संगीत,चित्र,वास्तु एवं मूर्ति कलाओं की मूल भारतीय परम्परा धीरे-धीरे क्षय होती गयी है।

साहित्यिक पक्ष

इस काल में साहित्य-रचना की तीन धाराएँ थीं। प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थी जिसका विकास परम्पराबद्ध था। दूसरी धारा साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखा जा रहा था। तीसरी धारा हिन्दी भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य की थी, जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में प्रतिबिंबित हो रही थी।

आदि काल के साहित्य को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— (१) सिद्ध साहित्य (२) जैन साहित्य (३) नाथ साहित्य (४) रासो साहित्य (५) लौकिक साहित्य। इस युग में काव्य-रचनाएँ प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों रूपों- में प्राप्त होती है।

सिद्ध साहित्य

बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए सिद्धों ने जो साहित्य लोक-भाषा में लिखा वह हिन्दी का सिद्ध साहित्य है। इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा एवं कुक्कुरिपा हिन्दी के मुख्य सिद्ध कवि हैं। सरहपा को हिन्दी का प्रथम कवि माना जाता है। इनकी कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

नाद न बिन्दु न रवि न शशि मण्डल,
चिअराअ सहावे मूकल।
अजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक,
निअहि बोहिया जाहुरे लांक।
हाथ रे काकाण मा लोउ दापण,
अपणे अपा बुझतु निअ-मण।

सरहपा की इस कविता से स्पष्ट है कि उस समय अपभ्रंश से हिन्दी का विकास होना प्रारम्भ हो गया था।

जैन साहित्य

जिस प्रकार हिन्दी के पूर्वी क्षेत्र में,हिन्दी कविता के माध्यम से सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार किया,उसी प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत का प्रचार हिन्दी कविता के माध्यम से किया। जैन साहित्य का सबसे

अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ है। संस्कृत के 'रस' शब्द को जैन साधुओं ने 'रास' रूप देकर रचना को प्रभावशाली शैली बनाया। देवसेन रचित 'श्रावकाचार', मुनि जिनविजयकृत 'भरतेश्वरबाहुबली रास' जिन धर्म सूरिकृत 'स्थूलि भद्र रास', विजयसेन सूरि का 'रेवंत गिरि रास' आदि जैन साहित्य की निधि हैं।

नाथ साहित्य

सिद्धों की वाममार्गी योगसाधना की प्रतिक्रिया में नाथपंथियों की हठयोग साधना प्रारम्भ हुई। गोरखनाथ, नाथ साहित्य के व्यवस्थापक माने जाते हैं। उन्होंने ईसा की तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में अपना साहित्य लिखा था। गोरखनाथ से पहले अनेक सम्प्रदाय थे, उन सब का नाथ पंथ में विलय हो गया था। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु-महिमा, इन्द्रिय-निग्रह, प्राणसाधना, वैराग्य, कुण्डलिनी जागरण, शून्य-समाधि आदि का वर्णन किया है। गोरखनाथ ने लिखा है कि धीर वह है जिसका चित्त विकार-साधन होने पर भी विकृत नहीं होता—

नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलैं, तब अंतरि बसै भँडारा॥

रासो साहित्य

हिन्दी साहित्य के आदि काल में रचित जैन 'रास काव्य' वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो-काव्यों से भिन्न है। दोनों की रचना-शैलियों का अलग-अलग भूमियों पर विकास हुआ है। जैन रास काव्यों में धार्मिक दृष्टि प्रधान है जब कि रासो परम्परा में रचित काव्य मुख्यतः वीरगाथा परक हैं। दलपत विजय कृत 'खुमाण रासो', नरपति नाल्ह रचित 'बीसलदेव रासो', चन्दवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' तथा जगनिक रचित 'परमाल रासो' (आल्हखंड), शारंगधर कृत 'हम्मीर रासो' आदि प्रसिद्ध रासो ग्रंथ हैं। 'पृथ्वीराज रासो' आदिकाल का इस परम्परा का श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसके रचयिता दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान के सामन्त तथा राजकवि चन्दवरदायी हैं। इसमें पृथ्वीराज चौहान के चरित्र का वर्णन है। यह महाभारत की तरह विशाल महाकाव्य है। इस काव्य में दो प्रमुख रस हैं—शृंगार और वीर। इसकी भाषा में ब्रज और राजस्थानी का मिश्रण है। शब्द-चयन रसानुकूल है। वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं। अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है। लगभग अड़सठ प्रकार के छंद इसमें प्रयुक्त हुए हैं। एक उदाहरण देखिए—

बज्जिय घोर निसांन रान चौहान चहूँ दिशि।
सकल सूर सामन्त समर बल जंत्र मंत्र तिसि।
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनहु वीर नट।
कढ़त तेग मन वेग लगत मनहु बीजु झट्ट घट्ट॥

वीर छंद में विरचित परमाल रासो (आल्हखण्ड) भी बड़ा लोकप्रिय काव्य है।

लौकिक साहित्य

आदि काल में कुछ ऐसे ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, जो पूर्वोक्त प्रमुख प्रवृत्तियों से भिन्न हैं। ऐसे सभी उपलब्ध काव्यों को लौकिक साहित्य की सीमा में गिना जाता है। ऐसे काव्यों में कुशल रायवाचककृत 'ढोला मारूरा दूहा' और खुसरो की पहेलियां प्रसिद्ध हैं। कुछ मुक्तक छंद भी मिलते हैं जो हेमचन्द्र के 'प्रवन्धचिन्तामणि' में संकलित हैं।

आदि काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं:——

१. बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं में एक ओर गुह्य साधनाओं की चर्चा है, दूसरी ओर वर्णाश्रम व्यवस्था का तीव्र विरोध है।
२. जैनाचार्यों की रचनाओं में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के बड़े ही सरस वर्णन हैं, नैतिक आदर्शों का प्रचार-प्रसार है।
३. नाथ सम्प्रदाय के साधकों की रचनाओं में हठयोग की साधना-पद्धति का दर्शन है, तीव्र वैराग्य की भावना जगायी गयी है और वर्ण-जाति के वन्धन से ऊपर उठने का आग्रह है।
४. रासो साहित्यमेंआश्रयदाताओं के युद्धोत्साह, केलि क्रीड़ा आदि के बड़े सरस वर्णन हैं। इतिहास के साथ कल्पना का प्रचुर उपयोग किया गया है। वीर और शृंगार रस का प्राधान्य है और प्रसंगानुसार कहीं परुष और कहीं कोमल कान्त शब्दावली का उपयोग है।
५. लौकिक साहित्य में शृंगार, वीर और नीतिपरक भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। खुसरो की पहेलियों में व्यंग-विनोद की अभिव्यंजना है।

आदि काल का योगदान

सारांश यह है कि आदि काल में हिन्दी भाषा जन-जीवन से रस लेकर आगे बढ़ी है। उसने अपनी अनेक बोलियों को एकरूपता की ओर बढ़ाकर एक सूत्र में बाँधा है। जीवन के विविध पक्षों का उसके काव्य में चित्रण हुआ है। परवर्ती कालों के लिए उसने अनेक परम्पराएँ डाली हैं, अनेक काव्य रूप और शैली-शिल्प आदिकालीन साहित्य में प्रकट और पुष्ट हुए हैं। अतः आदिकाल हिन्दी साहित्य का समृद्ध काल कहा जा सकता है।

भक्ति काल

जिस काल में मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उसे भक्ति काल कहा जाता है। लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण इस काल की भक्ति-भावना लोक-प्रचलित भाषाओं में

अभिव्यक्त हुई । इस युग को हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल भी कहते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल का निर्धारण १३१८ से१६४२ ई०तक किया है । भक्ति काव्य की परम्परा परवर्ती काल तक भी प्रवाहित होती रही है । अतः अध्ययन की सुविधा के लिए भक्ति काल को चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानना उचित होगा । विदेशी सत्ता प्रतिष्ठित हो जाने के कारण देश की जनता में गौरव,गर्व और उत्साह का अब अवसर न रह गया था।अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवद्-भक्ति ही एक सहारा थी । युगद्रष्टा भक्त कवियों ने देश की जनता को सँभालने के लिए जिस काव्य का गान किया, भक्ति काल उसी का शुभ परिणाम है ।

राजनीतिक स्थिति

भक्ति काल का आरम्भ दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक(१३२५-१३५१) के राज्यकाल में हुआ । शासक वंशों में सत्ता प्राप्त करने के लिए विद्रोह होते रहते थे। शेरशाह ने सैन्य योजना सुसंगठित की थी,जिसका लाभ अकबर ने भी उठाया था। मुगलों में अकबर का राज्यकालसभी दृष्टियों से सर्वोपरि रहा । वह हिन्दू-मुसलमान के समन्वयसम्बन्धी प्रयत्नों से शांति तथा व्यवस्था की स्थापना में सफल हुआ। जहांगीर और शाहजहां ने भी बहुत कुछ अकबर का ही अनुसरण किया था। इस समय तक देश की सैनिक शक्ति प्रायःक्षीण हो चुकी थी और विजेताओं का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो चुका था । ऐसी अवस्था में वीरों के प्रशस्ति-गीत अपना प्रभाव खो चुके थे ।

सामाजिक स्थिति

भारतीय समाज में वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है । विशेषता यह है कि जिस समाज ने पारसी, यवन (यूनानी),शक,हूण आदि अनेक जातियों के साथ समन्वय करके उन्हें आत्मसात कर लिया,उसी का पैगम्बरी धर्म के अनुयायियों के साथआपसी मेल-मिलाप उसी गति के साथ सम्भव न हो सका। फलस्वरूप दोनों पक्षों के बीच परस्पर संदेह,जुगुप्सा और भदभाव का वातावरण प्रबल हो उठा। विदेशी एवं विजातीय शासक हिन्दू जनता के साथ दुर्व्यवहार करते थे । छूआछूत के नियम कठोर और व्यापक थे । समाज में स्त्रियों का स्थान निम्न था । पर्दा प्रथा जोरों पर था । समाज में ऊँच-नीच की भावना पारस्परिक कटुता और घृणा की अवस्था तक पहुँच गयी थी । तत्कालीन साधु समाज पर भी पाखण्ड की काली छाया मँडराने लगी थी । दैनिक जीवन, रीति-रिवाज, रहन-सहन,पर्व-त्योहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज सुविधा-सम्पन्न और असुविधा-ग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त था । प्रथम वर्ग राजा-महाराजा, सुल्तान,अमीर,सामन्त और सेठ-साहूकारों का था । दूसरा वर्ग किसान, मजदूर और घरेलू उद्योग-धंधों में लगी सामान्य जनता का था । दूसरा वर्ग विपन्न और दुखी था।

गोस्वामी तुलसीदास कृत 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियों में तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाइ, का करी।

धार्मिक स्थिति

वैदिक धर्म की आस्था पर सिद्धों और नाथ पंथियों की रहस्य-गुह्य-साधना गहरा आघात कर चुकी थी। पूजा-पाठ, धार्मिक-क्रिया-कलाप आदि के प्रति जो आस्था हिन्दू-जीवन में थी, उसकी जड़ें प्राय: हिल चुकी थीं। साम्प्रदायिकता तथा अंध-विश्वासों का बड़ा विस्तार था। पाखण्ड की पूजा हो रही थी। पण्डित और मौलवी धर्म की मनमानी व्याख्या करके हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म को परस्पर विरोधी बना रहे थे। इस काल में धर्म साधनाओं की बाढ़ सी आ गयी थी। धर्माचार के नाम पर अनाचार और मिथ्याचार पलने लग गया था। ऐसे समय में उसे किसी समन्वयवादी दर्शन और आचार-पद्धति की आकांक्षा थी, जो जीवन की सहज अनुभूति पर आधारित हो। इसी की पूर्ति भक्ति-आन्दोलन में हुई।

भक्ति आन्दोलन

हिन्दी के वास्तविक साहित्य का प्रारम्भ भक्त कवियों की रचनाओं से ही होता है। इस भक्ति भावना को जन जीवन में व्याप्त करने के लिये ही वस्तुत: हिन्दी परिनिष्ठित अपभ्रंश, प्राकृताभास आदि से अलग हुई थी। उस युग की भक्ति भावना सम्पूर्ण देश की युग चेतना में परिव्याप्त थी। उत्तर भारत में भक्ति भावा को प्रवाहित करने का श्रेय स्वामी रामानंद तथा महाप्रभु वल्लभाचार्य को है। उत्तर भारत की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवस्थाएँइस भक्ति आन्दोलन के जागरण के लिए उत्तरदायी हैं। मध्यकालीन धर्मों में हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम प्रमुख थे; और पारस्परिक सम्पर्क रखते थे। उन दिनों हिन्दू और इस्लाम प्रधान धर्म थे। वैष्णव धर्म मूलत: भक्ति प्रधान है। सूफी, इस्लाम धर्म की एक शाखा थी। उसकी उपासना-पद्धति में प्रेम की प्रधानता है। किसी ने भगवान को निर्गुण समझा, किसी ने सगुण। कोई उसे ज्ञान से प्राप्त करना चाहता था, तो कोई विशुद्ध प्रेम से। इन धर्मों के अनुयायियों द्वारा भक्ति काव्य की उत्कृष्ट रचनाएँ हुईं। इस प्रकार भक्ति साहित्य का विपुल भंडार समृद्धि हुआ। भक्ति-आन्दोलन का व्यापकप्रभाव तत्कालीन वस्तु-कला, मूर्तिकला और चित्रकला पर भी पड़ा है।

इस प्रकार ईश्वर सम्बन्धी धारणा के स्वरूप, उपासना-पद्धति, दर्शन एवं भक्ति की मनोभावना के भेद के कारण भक्ति एक साथ ही कई धाराओं में बँट कर प्रवाहित हुई। यह विभाजन इस प्रकार है—
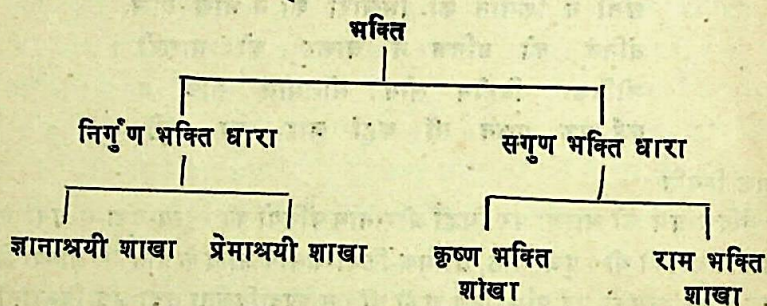
ज्ञानाश्रयी शाखा

यह उपासना ज्ञान और प्रेम पर आधारित है। भगवान के स्वरूप का तात्विक एवं अपरोक्ष साक्षात्कार तथा उसके प्रति अनन्य एवं सहज प्रेम ही निर्गुण उपासना का मूल स्वरूप है। निर्गुण सम्प्रदाय ने सहज एवं साधनापूर्ण जीवन-पद्धति का निर्देश दिया है। भक्तिकाल से पहले के जीवन में जो एक ओर व्रत आदि की रुढ़िवादिता थी और दूसरी तरफ रहस्य गुह्य साधनाओं की जो जटिलता थी, उनसे मुक्ति केवल सहज प्रेम, ज्ञान एवं सरल तथा सदाचारी जीवन दर्शन से ही मिल सकी थी। यह कार्य निर्गुण-भति ने किया। यही कारण है कि इस युग की सहज अनुभूति की कविता जनमानस की भाषा में अभिव्यत हुई। ज्ञानाश्रयी शाखा में भगवान के अवतारों की कल्पना का निषेध है। केवल निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना है। हिन्दी में इस ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रधान कवि कबीर हैं। वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे। उनकी भक्ति भावना में बाह्याडम्बर, तीर्थ,व्रत,रोजा-नमाज आदि का खंडन है और भगवान को अद्वितीय ज्ञान एवं शुद्ध प्रेम से प्राप्त करने का संदेश है। भक्ति भावना की अभिव्यक्ति उनका प्रमुख उद्देश्य है और वह अनुभूति ही काव्य बन गयी है। इस धारा के अन्य सन्त कवि नानक दादू, मलूकदास, रैदास आदि हैं।

प्रेमाश्रयी शाखा

इस शाखा के काव्यों का मूल विषय सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त एवं केवल सौन्दर्य वृत्ति से प्रेरित स्वच्छंद प्रेम तथा प्रगाढ़ प्रणय भावना है। इसके लिए नायक अनेक संकटों का सामना करने का साहस रखता है। सामाजिक रूढ़ियों में बँधे हुए परम्परागत प्रेम से हटकर स्वच्छंद प्रेम की पवित्रता की स्थापना भी इन काव्यों का मुख्य प्रयोजन एवं प्रमुख उपलब्धि है। लौकिक प्रेम की सहज अनुभूति में आध्यात्मिकता तथा उसकी

प्राप्ति के प्रयास में योग साधना के दर्शन कराके इन कवियों ने जीवन को एक आस्था दी है जो रहस्य गुह्य साधनाओं तथा कठोर धर्मोपदेश व्रत नियम आदि से उखड़ सी गई थी। ये कार्य प्रेम-कथाओं पर आध्यात्मिकता, रहस्यवाद, दार्शनिकता आदि के आरोप से तथा समासोक्ति या अन्योक्ति शैली को अपनाने से बड़ी ही सरलता से सिद्ध हो गया। इनकी कथावस्तु में लोक-कथाओं, इतिहास तथा कल्पना का मिश्रण है। इन काव्यों में रस, अलंकार आदि काव्यांगों का भी प्रौढ़ रूप मिलता है। इस धारा में मुसलमान और हिन्दू दोनों ही धर्मों के कवि आते हैं। अधिकांश तो सूफी हैं, पर कुछ निर्गुण सन्त और कृष्ण भक्त कवि भी हैं। इनमें बहुत से रहस्यवादी कवि भी हैं। रहस्यवाद के दर्शन से इस धारा के अधिकांश कवियों का भक्त कवियों में अन्तर्भाव हो जाता है। शुक्लजी ने प्रेममार्गी भक्तों की रचना-शैली को मसनवी कहा है, पर कुछ आलोचकों ने इन्हें भारतीय परम्परा के कथा-काव्य माना है। इन काव्यों में वातावरण और चरित्र-चित्रण भारतीयता के अनुरूप हुआ है। जायसी, मंझन, कुतबन, आदि इसधारा के प्रमुख कवि तथा 'पदमावत', 'अखरावट', 'मधुमालती' आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। इस शाखा के अधिकांश कवियों की भाषा अवधी है, पर अनेक कवियों ने राजस्थानी, व्रज और राजस्थानी मिश्रित व्रज का भी प्रयोग किया है।

सगुण भक्ति

जीवन में व्यापक आस्था लाने तथा समन्वयवादी जीवन-दर्शन एवं आचार-पद्धति प्रदान करने की भावना से भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ था। निर्गुण भक्ति प्रधानतः निवृत्ति मार्ग, वैराग्य, ज्ञान, निराकार के प्रति प्रेम, योग, साधना आदि के द्वारा अपनी अपेक्षाकृत एकांगी जीवनदृष्टि, अभिव्यंजना की शुष्कता एवं व्यंग्यों की तीक्ष्णता के कारण समग्र जीवन में आस्था लाने का कार्य सम्पन्न नहीं कर सकी। उसने बाह्याडम्बर, क्लिष्ट साधनाओं, पारस्परिक विद्वेष तथा कटुता के झाड़-झंखाड़ काट कर फेंक दिये और इस प्रकार एक समतल भूमि तैयार कर दी। प्रेम मार्गी कवियों में प्रेम की सरसता से इस जीवन-भूमि को सिंचित किया और फिर जीवन की आस्था और विश्वास का बगीचा सगुण भक्तिधारा के कवियों ने लगाया। कृष्ण-भक्ति में जीवन की सामान्य भावनाओं वात्सल्य, सख्य, रति-भाव के सभी रूपों को भक्ति में परिणत कर दिया। सारा जीवन ही साधना बन गया। इससे नित्य का लौकिक जीवन भक्तिमय हो गया। वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की जो आकांक्षा हिन्दू जीवन में थी, वह राम-भक्त तुलसीदास जी द्वारा पूर्ण हुई। उन्होंने जीवन की सभी परिस्थितियों के लिए आचार एवं धर्म के मानदंड दिये। जीवन को मर्यादा का मार्ग दिखाया तथा उस सब में भक्ति-रस प्रवाहित कर दिया। गृहस्थ और वैरागी, निवृत्तिमार्गी और प्रवृत्तिमार्गी दोनों के लिए धर्म के वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा तुलसीदास के द्वारा ही हुई। यही सगुण भक्ति

की देन है । आदि काल में राजा आदि व्यक्ति काव्य के आश्रय रहे । भक्तिकाल में उनका स्थान साक्षात भगवान ने ले लिया । यह कार्य भी सगुण भक्ति के द्वारा ही सम्पन्न हुआ

कृष्ण भक्ति शाखा

भगवान कृष्ण का लीला पुरुषोत्तम रूप इस शाखा के भक्तों का आराध्य है । राधा कृष्ण की विभिन्न लीलाएँ कृष्ण-साहित्य के प्रमुख विषय हैं। विद्यापति को इस शाखा का प्रथम कवि कहा जा सकता है । उनके बाद वल्लभ, निम्बार्क, राधा-बल्लभ, हरिदासी और चैतन्य सम्प्रदायों के भक्त कवियों ने कृष्ण-लीला का गायन किया । इन भक्तों ने अपने-अपने सम्प्रदायों की भावना के अनुसार कृष्ण की बाल-लीला, किशोर-लीला एवं यौवन-लीला का वर्णन किया है । वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण के बाल–रूप की ही आराधना है । शेष सम्प्रदायों में कृष्ण की किशोर एवं यौवन-लीला की प्रमुखता है । सूर तथा अष्टछाप के अन्य कवि वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे । अतः उनके काव्य में अन्य लीलाओं की अपेक्षा बाल–लीला का वर्णन अधिक है । बाल–वर्णन के क्षेत्र में सूरदास हिन्दी के ही नहीं, विश्व के श्रेष्ठ कवि हैं । कृष्ण–भक्ति के कवियों की भाषा ब्रज है । इन्होंने लीला रस प्रवाहित करने वाले मुक्तक पद लिखे हैं । 'सूरसागर'सूर का विशाल काव्य है । इस ग्रन्थ का उपजीव्य भागवत है । इसमें कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्र है, पर कवि का मन कृष्ण की बाल–लीला तथा गोपियों के साथ की गई प्रेम-लीला के संयोग एवं वियोग पक्षों के हृदयस्पर्शी वर्णन में अधिक रमा है । इनकी भक्ति पुष्टि मार्गीय कहलाती है । इसमें भगवान के अनुग्रह से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है, साधनाओं का कोई महत्त्व नहीं है । कृष्ण-भक्ति ने जीवन की सभी इच्छाओं का आलम्बन कृष्ण को बनाकर सारे जीवन को ही भक्तिमय कर दिया । इससे भारत के मध्यकालीन जीवन में वास्तविक आस्था का संचार हुआ ।

राम भक्ति शाखा

इस शाखा के कवियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का वर्णन किया । राम के चरित्र द्वारा ही जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए धर्म, सदाचार एवं कर्तव्य का सन्देश जनसाधारण को हृदयंगम कराया जा सकता था । राम के चरित्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी रूपकी पुनःप्रतिष्ठा हो सकी । राम का चरित्र इतना महान और व्यापक है कि इसमें सम्पूर्ण मानव मात्र को धर्म और जीवन का सन्देश देने की क्षमता है । यही कारण है कि काव्य के प्रबन्ध, मुक्तक, गीति आदि प्रकारों एवं दोहा-चौपाई कवित्त, घनाक्षरी आदि शैलियों का आश्रय लेकर रामचरित्र वर्णित हो सका । राम, काव्य में जैसे भक्ति के सर्वांगीण रूप का परिपाक हुआ है, वैसे ही काव्योत्कर्ष भी अपनी चरम सीमाओं का स्पर्श करता है । भाव, अनुभाव, रस,अलंकार किसी भी दृष्टि से देखें राम-काव्य हिन्दी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है । तुलसी इस धारा के सबसे

प्रमुख कवि हैं। जीवन का समन्वयवादी एवं मर्यादावादी दृष्टिकोण ही तुलसी की सबसे बड़ी देन है। जीवन की इस चेतना का स्पंदन आज भी भारतीय समाज अनुभव कर रहा है। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों ही भाषाओं में राम का गुणगान किया है। रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका आदि उनके अनुपम ग्रंथ हैं। विनयपत्रिका की भक्ति में ज्ञान और भक्ति का पूर्ण सामंजस्य है। रामभक्ति की धारा प्रधानतः प्रबन्ध काव्य के रूप में बही है। राम का चरित्र इसके लिए पूर्णतया उपयुक्त भी है,पर गीति और मुक्तक का क्षेत्र भी रामभक्ति से भरा पड़ा है।केशव की रामचन्द्रिका भी इसी धारा का ग्रंथ है। अग्रदास, नाभादास आदि महाकवि भी इसी धारा के हैं।

भक्ति काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

१. निर्गुणोपासना की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि निराकार ईश्वर के उपासक थे। गुरु के महत्व पर उनका विश्वास था और अंधविश्वास, रूढ़िवाद, मिथ्याडम्बर तथा जाति-पाँति के बन्धनों के वे विरोधी थे। इनके काल की भाषा में अनेक बोलियों का मिश्रण था तथा वह सीधी-सादी होती थी। प्रधान छंद, साखी (दोहा) और पद थे। विश्वबन्धुत्व की भावना जगाना इनका प्रधान उद्देश्य था।

२. निर्गुणोपासना की प्रेमाश्रयी शाखा के कवि भारतीय लोकजीवन में प्रचलित कथाओं एवं इतिहास-प्रसिद्ध प्रेमगाथाओं पर आधारित काव्य लिखते थे। इनमें सूफी उपासना-पद्धति का प्रभाव था। गुरु का महत्व था। भाषा अवधी थी तथा दोहा एवं चौपाई प्रमुख छंद थे।

३. सगुणोपासना में कृष्ण-भक्ति काव्य के आधार कृष्ण और राम-भक्ति के आधार राम भगवान के अवतार रूप में उपास्य थे। इनकागुणगान और लीलाओंकावर्णन प्रमुख था। सूर की काव्य-भाषा ब्रज थी। उन्होंने केवल मुक्तक पदों की रचना की, जिन्हें बाद में लीलाक्रम अथवा श्रीमद्भागवत के कथा-क्रम में संकलित कर लिया गया। तुलसी ने अवधी तथा ब्रजभाषा दोनों को काव्य-भाषा बनाया। तुलसी ने दोहा-चौपाई, सोरठा, बरवै, हरिगीतिका, सवैया आदि विविध छंदों का प्रयोग किया है। विनयपत्रिका में विनय के पद हैं।

४. इस काल की विशिष्ट प्रवृत्ति कवियों का राजाश्रय से स्वतंत्र होना है।

५. कृष्ण-भक्ति में श्रृंगार तथा वात्सल्य रस और सख्य भाव की प्रमुखता है। राम भक्ति में शांत रस तथा दास्यभाव की प्रधानता है।

भक्ति काल का योगदान

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति-काल को हिन्दी का स्वर्ण युग कहा जाता है। भक्त कवियों ने चित्त की जिस उदात्त भूमिका में रम कर हृदय-सागर का मंथन कर

मनोरम भावों के नवनीत को प्रदान किया है,वह भारतीय साहित्य की शाश्वत विभूति है। निर्गुणोपासना की ज्ञानाश्रयी शाखा के संत कवियों ने समाज-कल्याण के हितकारी उपदेश दिये। उन्होंने ज्ञान और सच्चे गुरु के महत्त्व को प्रतिष्ठा दी। प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी संत कवियों ने ईश्वर-प्राप्ति का मुख्य साधन प्रेम बताया। सगुणोपासक कवियों ने कृष्ण की मनोरम लीलाओं एवं राम के मर्यादा पुरुषोत्तम चरित्र की बड़ी ही मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत कीं। सीमित वर्ण्य विषयों का असीम वर्णन इस काव्य की विशेषता है। इन कवियों की रचनाओं की केवल विषयवस्तु ही नहीं अपितु काव्यशास्त्री पक्ष भी परम समृद्ध है।

रीति काल

6-12-71

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्य काल, जिसमें सामान्य रूप से श्रृंगार प्रधान लक्षण ग्रंथों की रचना हुई, रीति काल कहा जाता है। 'रीति' शब्द काव्यशास्त्रीय परम्परा का अर्थवाहक है। इस युग में कवियों की प्रवृत्ति रीति संबंधी ग्रंथ रचने की थी। इस काल के कवियों ने यदि श्रृंगारिक छंद भी रचे तो वे स्वतंत्र न होकर श्रृंगार रस की सामग्री के लक्षणों के उदाहरण होने के कारण रीतिबद्ध ही थे। इसीलिए इस काल को रीतिकाल का संज्ञा दी गयी है। श्रृंगार की रचनाओं की प्रमुखता के कारण इसे श्रृंगार काल भी कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका समय सन १६४३ ई० से १८४३ ई० तक निश्चित किया है परन्तु किसी भी युग की प्रवृत्तियाँ न तो सहसा प्रादुर्भूत ही होती हैं और न सहसा समाप्त हो जाती हैं। अनेक दशाब्दियों तक आगे-पीछे उनके प्रभाव पाये जाते हैं। अत: अध्ययन की सुविधा के लिए रीतिकाल की सीमाएँ हमें सामान्य रूप में सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक मान लेनी चाहिए।

राजनीतिक स्थिति

राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके बाद उत्तरोत्तर ह्रास, पतन और विनाश का युग कहा जा सकता है। शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल वैभव अपनी चरम सीमा पर रहा। जहाँगीर ने अपने शासनकाल में राज्य का जो विस्तार किया था, शाहजहाँ ने उसकी वृद्धि इतनी की कि उत्तरभारत के अतिरिक्त दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा राज्य तथा पश्चिम में सिन्ध के लहरी बन्दरगाह से लेकर पूर्व में आसाम में सिलहट और दूसरी ओर अफगान प्रदेश तक एक छत्र साम्राज्य की स्थापना होगयी थी। राजपूतों ने भी मुगलों के विश्वासपात्र एवं स्वामिभक्त सेवक होकर दिल्ली के शासन की अधीनता स्वीकार करली थी। देश में सामान्य रूप से शांति थी। राजकोष भरा-पूरा था। औरंगजेब के शासन की बागडोर सँभालते ही उपद्रव प्रारंभ हो गये थे। उसने उनका दमन किया। उसके पश्चात उसके पुत्रों में संघर्ष हुआ। १८५७ ई० की देशव्यापी राजक्रान्ति के बाद अंग्रेजों का शासन

स्थापित हो गया। अवध, राजस्थान और बुन्देलखंड के रजवाड़ों का अंत मुगल साम्राज्य के समान ही हुआ।

सामाजिक स्थिति

सामाजिक दृष्टि से यह काल घोर अधःपतन का काल था। इस काल में सामन्तवाद का बोलबाला था। सामन्तशाही के जितने भी दोष होने चाहिए, सभी इस काल में थे। सामाजिक व्यवस्था का केंद्र बिन्दु बादशाह था। उसके अधीन थे मनसबदार और अमीर-उमराव। समाज में दो वर्ग प्रधान थे। एक था शासक और दूसरा शासित। शासित वर्ग में एक ओर श्रमजीवी और कृषक थे तो दूसरी ओर सेठ-साहूकार और व्यापारी। जनसाधारण की बड़ी ही शोचनीय अवस्था थी। सेठ-साहूकार भाग्यवादी थे। विलास के उपकरणों की खोज, उनका संग्रह तथा सुरा सुन्दरी-की आराधना अभिजात वर्ग का अधिकार था। मध्यम और निम्न वर्ग के लोग उसका अनुकरण करते थे।

सांस्कृतिक स्थिति

सामाजिक दशा के समान ही देश की सांस्कृतिक स्थिति भी बड़ी शोचनीय थी। संतों एवं सूफियों के उपदेशों से प्रभावित होकर अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने हिन्दू, और इस्लाम संस्कृतियों को निकट लाने का जो उपक्रम किया था वह औरंगजेब की कट्टरवादी नीति के कारण समाप्तप्राय था। विलास-वैभव का खुला प्रदर्शन हो रहा था धार्मिक नियमों का पालन कठिन हो गया था।मंदिरों में भी ऐश्वर्य एवं विलास की लीला होने लगी थी।विलास के साधनों से हीन वर्ग कर्म एवं आचार के स्थान में अन्धविश्वासी हो चला था। जनता के इस अंधविश्वास का लाभ धर्माधिकारी उठाते थे।

साहित्य एवं कला की स्थिति

साहित्य एवं कलाओं की दृष्टि से यह काल पर्याप्त समृद्ध था। इस युग के कवि एवं कलाकार साधारण वर्ग के होते थे। तथापि उनका बड़ा सम्मान होता था। उनके आश्रयदाता मुगल सम्राट एवं राजा-महाराजा होते थे। कवियों एवं कलाकारों को अपने आश्रयदाताओं की अभिरुचि के अनुसार सृजन करना पड़ता था।इसका परिणाम यह हुआ कि इस युग के कवि एवं कलाकार प्रतिभावान होकर भी अपनी उत्कृष्ट मौलिकता समाज को प्रदान नहीं कर सके। बिलासी आश्रयदाताओं के लिए रचा गया इस युग का काव्य स्वभावतः श्रृंगार प्रधान हो गया है। नारी के बाह्य सौंदर्य के निरूपण में कवियों का श्रम सफल समझा जाता था।भाव पक्ष कीअपेक्षा कला पक्ष का उत्कर्ष हुआ। इस काल का काव्य शास्त्रीय अध्ययन संस्कृत के आचार्यों का स्मरण दिलाताहै।काव्य-कला के समान ही चित्र-कला की भी इस युग में बड़ी उन्नति हुई। स्थापत्य, संगीत एवं नृत्य कलाओं की उन्नति तो इस काल की अपनी विशेषता है। इस युग में श्रृंगार रस प्रधान था। भूषण जैसे एक-आध

कवि ने वीर रस की रचना की। रीतिमुक्त कवियों में भाव की तन्मयता देखी जा सकती है। दोहा, सवैया, घनाक्षरी, कवित्त जैसे छंद प्रचलित थे। ब्रजभाषा ही मुख्यत: काव्यभाषा थी।

भक्ति काल तक हिन्दी काव्य प्रौढ़ता को पहुँच चुका था। भक्त कवियों ने अपने आराध्य के लीला-वर्णन में लौकिक रस का, जो क्षीण रूप प्रस्तुत किया था, उत्तर मध्यकालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर वह पूर्ण ऐहिकता परक प्रधानत: श्रृंगाररस के रूप में विकसित हुआ। भक्ति कालीन कवियों में सर्वप्रथम नन्ददास ने नायिकाभेद पर 'रस मंजरी' नाम की पुस्तक की रचना की। संस्कृत की काव्य शास्त्रीय परम्परा पर हिन्दी काव्य में 'रीति' के वास्तविक प्रवर्तक केशवदासजी हैं। इस दृष्टिकोण से रचे गये 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया,' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इसके बाद हिन्दी रीति ग्रंथों की परम्परा निरन्तर विकसित होती गयी। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस युग के सम्पूर्ण साहित्य को 'रीतिबद्ध' और 'रीतिमुक्त' वर्गों में बाँटा गया है।

रीतिबद्ध काव्य

रीतिबद्ध काव्य के अन्तर्गत वे काव्य ग्रंथ आते हैं जिनमें काव्य-तत्त्वों के लक्षण देकर उदाहरण रूप में काव्य रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। इस परम्परा में कतिपय ऐसे आचार्य थे, जिन्होंने काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीति ग्रंथों का प्रणयन किया था। समस्त रसों के निरूपक आचार्यों में चिंतामणि का नाम सर्वप्रथम आता है। 'रस विलास', 'छन्दविचार,' 'पिंगल,' 'श्रृंगार मंजरी,' 'कविकुल कल्पतरु' आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। चिन्तामणि की परम्परा के दूसरे महत्वपूर्ण कविआचार्य कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास, ग्वाल कवि आदि हैं। जिन कवियों के कृतित्व के कारण रीतिकाव्य प्रतिष्ठित हुआ, उनमें देव का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। नव रसों का सफल निरूपण करने वाले आचार्यों में पद्माकर तथा सैयद गुलाम नबी 'रसलीन' आदि प्रसिद्ध हैं। श्रृंगार रस विषयक सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्यों में मतिराम का नाम सर्वप्रथम है। रीतिबद्ध काव्य-परम्परा के कवियों में कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने रीति ग्रंथों की रचना न करके काव्य सिद्धान्तों या लक्षणों के अनुसार काव्य-रचना की है। ऐसे कवियों में सेनापति, बिहारी, वृन्द, नेवाज, कृष्ण कवि आदि की गणना की जाती है। सेनापति का प्रसिद्ध ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' है। बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनकी ख्याति का मूल आधार इनकी श्रेष्ठ कृति 'सतसई' है। दोहा जैसे छोटे से छंद में एक साथ ही अनेक भावों का समावेश कर सकने की सफलता के कारण इनके काव्य में 'गागर में सागर' भरने की उक्ति चरितार्थ होती है।

रीतिमुक्त काव्य

रीति परम्परा के साहित्यिक बन्धनों एवं रूढ़ियों से मुक्त इस काल की स्वच्छन्द काव्य-धारा को रीतिमुक्त काव्य कहा जाता है। आन्तरिक अनुभूति, भावावेग, व्यक्तिपरक अभिव्यंजना की सांकेतिक काव्य-रूढ़ियों से मुक्ति, कल्पना की प्रचुरता आदि इसकी

विशेषताएं हैं। इस धारा के प्रमुख कवि घनानंद हैं। इनकी काव्य-शैली बड़ी भावात्मक तथा मार्मिक है। इस धारा के कवियों की लगभग सारी विशेषताएं इनके काव्य में एक-साथ प्राप्त हो जाती हैं। इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव।

रीति काल की प्रमुख प्रवृत्तियां

१. रीति निरूपण—इस युग में रीति ग्रंथों की रचना मुख्यतः तीन दृष्टियों से की गयी है। इनमें प्रथम उन रीति ग्रंथों का निर्माणहै जिनका उद्देश्य काव्यांग विशेष का परिचय करना है, कवित्व का आग्रह नहीं है। जसवंत सिंह का 'भाषा-भूषण', याकूब खां का 'रस-भूषण', दलपतिराय वंशीधर का 'अलंकार-रत्नाकर' आदि रचनाएं इसी कोटि में आती हैं। द्वितीय दृष्टि में रीति कर्म और कवि-कर्म का समन्वय मिलता है। इनमें चिंतामणि, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर, ग्वाल आदि आते हैं। लक्षणों का निर्माण न करके काव्य-परम्परा के अनुसार साहित्य सृजन करने वाले कवियों को तीसरी कोटि में रखा जाता है; यथा बिहारी, मतिराम, भूपति आदि।

२. शृंगारिकता—शृंगार की प्रवृत्ति रीतिकाल की कविता में प्रधान है। शृंगार के संविधान में नायक-नायिकाओं के भेद, उद्दीपक सामग्री, अनुभवों के विविध रूपों, संचारियों, संयोग के विविध हाव तथा वियोग की विभिन्न कार्यदशाओं का निरूपण इस प्रवृत्ति का प्राण है। इसमें नारी के बाह्य चित्रण की प्रमुखता है।

३. राज-प्रशस्ति—यह प्रवृत्ति अलंकार और छंदों के विवेचन करने वाले ग्रंथों में भी देखने को मिलती है। इसका मुख्य विषय आश्रयदाताओं की दानवीरता अथवा युद्धवीरता की प्रशंसा ही रही है।

४. भक्ति की प्रवृत्ति—रीतिग्रंथों के प्रारम्भ में मंगलाचरणों, ग्रंथों के अंत में आशीर्वचनों, भक्ति एवं शान्त रसों के उदाहरणों में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। राम और कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में ग्रहण किया गया है। इस काल में कवियों के आकुल मन के लिए भक्ति शरण-भूमि थी। विलासिता के वर्णन से ऊबे हुए कवियों के द्वारा भक्ति की रची गयी फुटकर रचनाएं बड़ी सुन्दर हैं।

५. नीति की प्रवृत्ति—अन्योपदेश तथा अन्योक्तिपरक रचनाओं में नीति की प्रवृत्ति मिलती है। इस प्रकार की रचनाओं में वैयक्तिक अनुभवों का विशेष ध्यान है।

रीति काल का योगदान

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का अपना विशिष्ट स्थान है। इस काल में भारतीय काव्यशास्त्र की हिन्दी में अवतारणा हुई। इस काल की कविता का सामाजिक मूल्य भी है। पराभव के उस युग में समाज के अभिशप्त जीवन में सरसता का संचार कर रीति-

कालीन कवियों में अपने ढंग से समाज का उपकार किया था। कला की दृष्टि से भी रीति काल के काव्य का महत्त्व असंदिग्ध है। इसी काल के कवियों ने व्रजभाषा को पूर्ण विकास तक पहुँचाया।

आधुनिक काल

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का सूत्रपात अंग्रेजों की साम्राज्यवादी शासन-प्रणाली के नवीन अनुभव से हुआ था, जिसमें बाहर तो बड़ी शान्ति दृष्टिगत होती थी किन्तु भीतर धन का अविरल प्रवाह विदेश की ओर अग्रसर रहता था। यद्यपि अंग्रेज हमारा आर्थिक शोषण करते रहे और अपने देश के सरकारी और साथ ही साथ व्यक्तिगत खजाने भी लगातार भरते रहे, तथापि भारतवर्ष में वैज्ञानिक बोध का प्रसार अंग्रेजों के सम्पर्क के फलस्वरूप ही हुआ। आधुनिक युग, जीवन की यथार्थता के ग्रहण, इस विश्व के विभिन्न व्यापारों के बुद्धिपरक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और साहित्य में सामान्य मानव की प्रतिष्ठा का युग रहा है, और यह आधुनिक चेतना हमें अंग्रेजों के सम्पर्क से उपलब्ध हुई है। आधुनिक हिन्दी काव्य इसी आधुनिक बोध से ओत-प्रोत आधुनिक चेतना से अनुप्राणित काव्य है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल का प्रारंभ सन १८४३ से माना है। अन्य अनेक विद्वानों की सम्मति में इसका प्रारंभ उन्नीसवीं शती के मध्य से होता है। ७-८ वर्ष आगे-पीछे माने जाने से यह तथ्य विवादास्पद नहीं है। अध्ययन की सुविधा के लिए आधुनिक काल का उपविभाजन इस प्रकार किया गया है।

१–पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग)	१८५७—१९०० ई०
२–जागरण-सुधार काल (द्विवेदी युग)	१९००—१९१८ ई०
३–छायावाद काल	१९१८—१९३८ ई०
४–छायावादोत्तर काल—	
(क) प्रगतिवाद, प्रयोगवाद	१९३८—१९५३ ई०
(ख) नवी कविता काल	१९५३ ई० से

पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग)—१८५७ से १९०० ई० तक

हिन्दी कविता में आधुनिकता का स्वर सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में सुनने को मिला। हिन्दी काव्यधारा में नवजीवन के संचरण के लिए उन्होंने ही 'कविता वर्धिनी सभा' जैसी नवीन साहित्यिक संस्था की स्थापना की थी और उसके मुखपत्र के रूप में 'कविवचन सुधा' प्रकाशित की थी। भारतेन्दुजी की इस साहित्यिक संस्था की बैठकों की सूचना इसी पत्रिका में छपा करती थी। इसी पत्रिका में उसकी बैठकों में पठित रचनाएँ प्रकाशित हुआ करती थीं और इसी पत्रिका में उन पर मिलने वाले पुरस्कारों की

घोषणा होती थी। हिन्दी के आधुनिक काल का कवि अपनी रुचि के विषय को लेकर अपनी रुचि की भाषा और अपनी रुचि के साहित्यिक संविधान में कुछ कहने को स्वच्छन्द था। आधुनिक हिन्दी काव्य आधुनिक कवियों के इसी स्वच्छन्द और समर्थ व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।

यह मनुष्य की सीमा है कि नवीनता के प्रति अत्यधिक आग्रहशील व्यक्ति भी परम्परा के प्रभाव से अपने को पूर्णतः मुक्त नहीं कर पाता। भारतेन्दु को एक ओर हम देश के आर्थिक शोषण से विक्षुब्ध, स्वदेशानुराग की भावना से ओतप्रोत, मातृभाषा की प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए कृतसंकल्प, समाज के सुसंस्कार के हित सहज तत्पर, प्रकृति की दिव्य शोभा के प्रति स्नेह-विह्वल देखते हैं, और दूसरी ओर वे वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करते हैं, राजाश्रित कवियों की भाँति महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा में तल्लीन हैं, रीति कालीन कवियों के समान काव्य की श्रृंगार सज्जा में प्रवीण हैं। उनके समकालीन कवियों में भी इसी द्विधा व्यक्तित्व की अभिव्यंजना मिलती है। भारतेन्दु स्वयं तो सन १८८५ में दिवंगत हो गये थे, किन्तु उनके समकालीन प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास आदि का काव्याभ्यास उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक चलता रहा। उत्तरार्द्ध के कवि श्रीधर पाठक में आधुनिक कविता का स्वच्छन्दतावादी स्वर और अधिक मुखरित हुआ।

जागरण-सुधार काल (द्विवेदी युग) १९०० से १९१८ ई० तक

सन् १९०० ई० में 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ हिन्दी कविता में आधुनिक प्रवृत्तियाँ बद्धमूल होनी आरंभ हुईं। भारतेन्दु युग में उस काल की द्विधा वृत्ति के अनुरूप साहित्यिक भाषा के भी दो रूपों का प्रचलन रहा। गद्य रचनाएँ तो खड़ी बोली में लिखी गयीं, किन्तु काव्य-साधना ब्रज भाषा में ही चलती रही। आधुनिकता को हिन्दी साहित्य में पूर्णतः बद्धमूल करने के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे जागरूक, व्यवस्थित और सशक्त व्यक्तित्व की अपेक्षा थी। सन् १९०३ में उन्होंने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार ग्रहण किया और अपने महाप्राण व्यक्तित्व की छाया में हिन्दी भाषा और साहित्य का सम्पूर्ण संविधान ही बदल डाला। इसीलिए सन् १९०० से १९१८ तक के काल को द्विवेदी युग की संज्ञा दी जाती है।

आचार्य द्विवेदी की विशेष प्रसिद्धि हिन्दी गद्य के परिष्कृत, परिमार्जित और व्याकरण सम्मत बनाने की दृष्टि से है किन्तु इससे भी अधिक उनका महत्त्व हिन्दी के शब्दभण्डार की अभिवृद्धि, उसकी अभिव्यंजना शक्ति के संवर्धन और उसे ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम धाराओं की अभिव्यक्ति के योग्य बनाने का रहा है। हिन्दी कवियों को उन्होंने ब्रजभाषा के मध्ययुगीन माध्यम को छोड़कर खड़ी बोली का आधुनिक माध्यम अपनाने की प्रेरणा दी। आचार्य द्विवेदी के काव्यदर्शन में परम्परा, विशेषरूप से उसके

जड़ पक्षों के प्रति प्रवल विद्रोह का स्वर है और साथ ही साथ नये क्षेत्रों एवं प्रदेशों के पथ पर अग्रसर होने का आह्वान भी है।

आधुनिक काव्य-दृष्टि के अनुरूप उन्होंने कविता को मन के भावावेग का सहज उद्गार बताया। उनकी धारणा थी कि चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पर्वत सभी को लेकर कविता लिखी जा सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है। आचार्य द्विवेदी के इस व्यापक काव्य-दर्शन को लेकर मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', कामता प्रसाद गुरु, लोचनप्रसाद पांडेय आदि ने कविताएँ लिखीं। इनकी रचनाओं में भी हमें परम्परा और प्रयोग दोनों के स्वर सुनने को मिलते हैं। आचार्य द्विवेदी पर्याप्त सहृदय होते हुए भी मूलतः बुद्धिवादी थे, और उनके इसी व्यक्तित्व के अनुरूप उनके युग के साहित्य में इस जगत के जीवन-प्रवाह का बुद्धिपरक व्याख्यान मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त को हम भारतीय इतिहास के लगभग सभी पृष्ठों की बुद्धिपरक व्याख्या उपस्थित करते हुए देखते हैं, जो उनके रसात्मक व्यक्तित्व के कारण सरस भी है। उपाध्यायजी ने पहले कृष्ण और राधा की कथा को आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण के अनुरूप नवीन कलेवर देकर उपस्थित किया और फिर कालांतर में इसी दृष्टि से वैदेही-वनवास का प्रसंग प्रस्तुत किया। इस काल में अकेले 'रत्नाकर' परम्परा के साथ पूर्णतः आवद्ध होकर मध्ययुगीन विषयों पर मध्ययुगीन काव्यभाषा में मयध्युगीन कला–सौष्ठव की ही सृष्टि करते रहे।

छायावाद काल (१६१८ से १६३८ तक)

प्रसादजी का रचनाकाल, जिनकी प्रारंभिक रचनाओं में ही स्वानुभूति का स्वर प्रधान है, द्विवेदी युग के मध्य काल सन १६०६ से 'इन्दु' पत्रिका के प्रकाशन के साथ आरंभ होता है। 'इन्दु' की प्रथम कला की प्रथम किरण में ही हम उन्हें स्वच्छन्दतावाद का उद्घोष करते देखते हैं।

स्वच्छन्दतावाद साहित्य में विद्रोह का स्वर रहा है। सामाजिक जीवन में वह रूढ़ियों और परम्पराओं के प्रति विरोध और व्यक्ति के अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने की प्रवृत्ति रूप में प्रकट हुआ है। साहित्य में वह अत्यधिक सामाजिकता के विरोध में, आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को प्रश्रय देता है। स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार स्वभावतः अनुभूतिशील और भावुक मनोवृत्ति का होता है। वह जीवन को अपनी भावना और कल्पना से अनुरंजित करके उपस्थित करता है। वह मूलतः सौन्दर्य का साधक होता है और उसकी यह सौन्दर्य-साधना कभी किसी मानवीय रूप के लिए होती है, कभी प्रकृति के प्रति उन्मुख तथा कभी किसी दिव्य अनुभूति से संप्रेरित होती है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य-रचनाओं का कलापक्ष भी नवीनता लिए हुए होता है। उसमें मौलिक कल्पना का स्वच्छन्द विलास ही दृष्टिगत होता है। हिन्दी का छायावादी काव्य इन सभी विशेषताओं से समन्वित है, साथ ही उसमें भारतीय जीवनधारा की कुछ परम्परागत और कुछ युगीन प्रवृत्तियां भी प्रकट हुई हैं। परम्परागत प्रवृत्तियां—आध्यात्मिकता का संस्पर्श और वैष्णव भक्ति भावना तथा युगीन प्रवृत्तियां—राष्ट्रीयता, पीड़ित जनता के प्रति सहानुभूति, दु:खवाद या निराशावाद की हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूतियों का स्वरूप भी भिन्न होता है; इसीलिए हिन्दी के इन स्वच्छन्दतावादी कवियों का भी अपना अलग-अलग व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में उभरा है। उनकी काव्य-प्रवृत्तियों में इसीलिए पर्याप्त वैभिन्य है।

हिन्दी की स्वच्छन्तावादी काव्यधारा में आधुनिक काल के आध्यात्मिक महापुरुषों—रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ और कालान्तर में अरविन्द का प्रभाव रहा है। रवीन्द्रनाथ की आध्यात्मिक रचनाओं से भी हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने बहुत कुछ ग्रहण किया है। इसीलिए प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी की रचनाओं में अनेक स्थलों पर इस जगत के विभिन्न स्वरूपों में उस परब्रह्म का छायाभास पाने जैसी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इसी आध्यात्मिक छायादर्शन की प्रवृत्ति के कारण इस काव्यधारा को छायावादी काव्यधारा कहा गया। किन्तु छायावादी कवियों का सम्पूर्ण साहित्य इस आध्यात्मिक प्रवृत्ति से ओतप्रोत नहीं है।

छायावादी कविता के ह्रास का सबसे बड़ा कारण विदेशी शासन के दमन-चक्र के नीचे पिसते हुए भारतीय जनसाधारण की निरन्तर बढ़ती हुई पीड़ा को कहा जा सकता है; उसी के बोध को लेकर प्रसाद, निराला और पन्त अपने मनोलोक के भावना और कल्पना के प्रदेशों से निकल कर कठोर यथार्थ की भूमि पर उतर आये, पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट करने लगे, जनता के दुख-दर्द को वाणी देने लगे और अपने चारों ओर की कुरूपताओं को मिटाने में तत्पर हो उठे। प्रसाद ने कथा-साहित्य, पन्त ने काव्य-रचनाओं और निराला ने गद्य और पद्य दोनों ही विधानों में अपने चारों ओर के कठोर यथार्थ का चित्रण करने वाली रचनाएँ उपस्थित कीं। किन्तु जीवन का यह नया यथार्थ अपने समुचित विकास के लिए नये जीवन-दर्शन की अपेक्षा रखता था। यह नया यथार्थ एक तो बाहर का था जिसमें एक ओर पूंजी की वृद्धि होती थी और दूसरी ओर दीनता का प्रसार होता था। मनुष्य के मन के भीतर की घुटन, निराशा, कुंठा आदि व्यक्तित्व को खंडित करने वाली अनेक वृत्तियां बड़ी सरगर्मी से चक्कर लगा रही थीं। जीवन के बाह्य यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन अपनाया गया और मनुष्य के मन के भीतर के यथार्थ को बाहर लाने के लिए

सिगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त को उपयोगी समझा गया। साहित्य में प्रथम को प्रगतिवाद और दूसरे को प्रयोगवाद की संज्ञाएं मिलीं।

छायावादोत्तर-काल (प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद)—१९३८ से १९५३ ई० तक

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद की प्रतिष्ठा पश्चिम की मार्क्सवादी विचारधारा को लेकर हुई। किन्तु हमारे देश की भूमि पहले से ही इस नये जीवनदर्शन के लिए परिपक्व थी। यूरोप में पूँजीवादी सभ्यता के पर्याप्त विकसित हो जाने पर उसकी दुर्बलताओं को भली प्रकार पहचान कर उन्हें दूर करके नवीन सभ्यता के आविर्भाव की दृष्टि से साम्यवाद एवं अन्य प्रगतिशील विचारधाराओं का जन्म हुआ था। हमारे देश में भी औद्योगीकरण का क्रम बड़ी द्रुतगति के साथ चल रहा था और उसके फलस्वरूप मजदूर-संगठन और उनकी देखा-देखी किसान सभाएँ भी बनने लगी थीं। सन् १९१७ में रूस में राज्य क्रांति के अनन्तर सोवियत शासन स्थापित हो जाने पर भारतीय बुद्धिवादी भी सर्वहारा वर्ग को संगठित करके जनक्रांति की बात सोचने लगा था। पंडित जवाहरलाल नेहरू और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महापुरुषों ने भी रूसी क्रांति और सोवियत शासन का अभिनन्दन किया था। इसी पृष्ठभूमि में सन् १९३६ की लखनऊ कांग्रेस के समय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। गांधीजी की विचारधारा से पर्याप्त प्रभावित प्रेमचन्दजी इस संस्था के प्रथम अधिवेशन के सभापति हुए। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन चाहे मार्क्सवाद से अधिक अनुप्राणित हो गया हो, किन्तु आरम्भ में गांधीवादियों और क्रांग्रेस के वामपंथी विचारधारा के अनेक व्यक्तियों ने इसका सम्पोषण किया था। नरेन्द्र शर्मा का काव्य विकास प्रेम और प्रकृति के उपरान्त गांधीवाद और प्रगतिवाद की भूमिका तक पहुँचा। अब वे दर्शन एवं चिंतन प्रधान हो गये हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओं से आधुनिक काव्य में प्रगतिवादी आन्दोलन का आरंभ हुआ। गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपने संबंध में, अपने समाज देश और विदेश के संबंध में गम्भीरता से सोचने को बाध्य किया और एक चिन्तन दिशा प्रदान की। रामधारीसिंह 'दिनकर' ने इसके क्राँतिकारी पक्ष को वाणी दी और फिर रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवमंगल सिंह 'सुमन' डाँ० रामबिलास शर्मा की रचानाओं में उसका स्वरूप और निखरा।

प्रगतिवाद के साथ-साथ मनुष्य के मन के यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली प्रयोगवादी काव्यधारा भी सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के नेतृत्व में प्रवाहित हुई। इस धारा के कवियों पर प्रारंभ में फ्रॉयड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रभाव विशेषरूप से था। सन् १९४३ में 'अज्ञेय' ने अपनी पीढ़ी के छः कवियों के सहयोग से 'तार सप्तक' का प्रकाशन किया।

इस काव्यधारा को प्रयोगवाद की संज्ञा क्यों दी गयी इस सम्बन्ध में भी 'अज्ञेय' का यह वक्तव्य द्रष्टव्य हैं :–

"प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किया है · · · किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण होना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"

नयी कविता काल (१९५३ ई० से—)

मनुष्य का मनःलोक अब तक सर्वाधिक अभेद्य रहा था और अज्ञेयजी अथवा प्रयोगवादी कवियों के सौभाग्य से फ्रॉयड ने उसकी अर्गला खोल दी थी। भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदि की रचनाओं में आधुनिक मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों 'संवंधित विचार प्रवाह', 'मुक्त चेतनाधारा', 'मनोविश्लेषण' आदि के अनुरूप मनुष्य के मनोलोक के भावना–प्रवाह, स्वप्न, अवचेतन के भाव–खण्डों आदि के चित्रण देखने को मिलते हैं। किन्तु अब स्वयं 'अज्ञेय' इस प्रवृत्ति को छोड़ रहे हैं और अन्य प्रयोगशील कवि भी यदा-कदा ही इसे अपनाते हैं। हिन्दी कविता इस प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति से भी आगे बढ़ गयी है और अब पहले की कविता से अपनी पूर्ण 'पृथकता' घोषित करने के लिए 'नयी कविता' प्रयत्नशील है। सन् १९५४ में डॉ० जगदीश गुप्त और डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में 'नयी कविता', काव्य संकलन के प्रकाशन से आधुनिक काव्य के इस नये रूप का शुभारंभ हुआ था और वह इसी नाम के संकलनों में ही नहीं 'कल्पना', 'ज्ञानोदय' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से भी आगे बढ़ती रही है। वयोवृद्ध कवि पन्तजी ने 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा दिनकर ने 'चक्रवाल' की कुछ रचनाओं में इसी नवीन काव्य–प्रवृत्ति को अपनाया है। नयी कविता की आधारभूत विशेषता है कि वह किसी भी दर्शन के साथ बँधी हुई नहीं है और वर्तमान जीवन के सभी स्तरों के यथार्थ को नयी भाषा, नवीन अभिव्यंजना विधान और नूतत कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त करने में संलग्न है। हिन्दी का यह नया काव्य कविता के परम्परागत स्वरूप से इतना अलग हो गया है कि कविता न कहकर अकविता कहा जाने लगा है।

अध्ययन और अध्यापन

कविता का मुख्य उद्देश्य काव्य-सौन्दर्य की रसानुभूति द्वारा आनन्द प्राप्त कराना है। यह आनन्द मूलतः अर्थ का आनन्द है जो कविता में अन्तर्निहित रहता है। कविता का अध्ययन-अध्यापन इस प्रकार होना चाहिए कि इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके। इसके लिए पूरी कविता को एक साथ पढ़ना चाहिए। पढ़ते समय यह ध्यान बराबर रखना चाहिए कि छन्द की लय, गति, यति का अनुसरण भी अर्थ-ग्रहण में सहायक होता है।

कक्षा में कविता का प्रभावशाली मुखर वाचन बहुत महत्त्वपूर्ण है। अध्यापक अपने आदर्श वाचन से इसमें सहायता दे सकते हैं। कक्षा में अच्छा पढ़ने वाले छात्र आदर्श प्रस्तुत कर सकते हैं और शेष छात्र उनका अनुकरण कर सकते हैं।

रस-निरूपण, छंद-विधान और अलंकार-योजना का बोध कविता के भाव ग्रहण करने में सहायक होता है। परिशिष्ट में काव्य के इन अंगों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ आवश्यक संदर्भ तथा अन्तः कथाएँ भी दी गई हैं। इस सारी सामग्री का अध्ययन भलीभांति करना चाहिए। इस अध्ययन से रचनाओं के भाव-ग्रहण में सहायता मिलेगी और सौदन्र्यानुभूति के साथ काव्यानन्द की भी उपलब्धि हो सकेगी। बार-बार पढ़ने से ही अच्छी कविता का सौन्दर्य सहज-ग्राह्य होता है।

पुस्तक में संकलित कुछ कविताएँ अपेक्षाकृत बड़ी हैं जिनमें आद्यन्त पूर्वापर संबंध लिए हुए एक ही कथा या भाव का वर्णन है, जैसे मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'कैकेयी-अनुताप', प्रसाद की 'श्रद्धा-मनु', निराला का 'बादल-राग', पन्त का 'नौका विहार' और 'परिवर्तन' आदि आधुनिक काल के कवियों की रचनाएँ। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जो अलग-अलग अपने अर्थ में पूर्ण और स्वतंत्र हैं, जैसे कबीर की साखियाँ और तुलसी तथा बिहारी के दोहे एवं महादेवी वर्मा के गीत आदि। इस प्रकार की स्वतन्त्र रचनाएँ मुक्तक कहलाती हैं। प्रत्येक दोहा या पद अपने में पूर्ण है, अतः प्रत्येक को पूरी कविता मानकर ही पढ़ना चाहिए और इसी प्रकार उसकी व्याख्या भी करनी चाहिए।

आपको किसी कविता में मुख्यतः नाद-सौन्दर्य मिलेगा तो किसी में भाव या विचार सौन्दर्य। कविता का नाद-सौन्दर्य वर्णों की आवृत्ति,शब्द-योजना,अंलकार-योजना,चित्रात्मक भाषा आदि पर निर्भर है। अतः इन विशेषताओं पर ध्यान रखकर कविता का सस्वर पाठ करने से नाद-सौन्दर्य अपने आप परिलक्षित होगा। अधिकतर कविताएँ छन्दोबद्ध हैं। मध्ययुगीन कवियों की कविताएँ छंदोबद्ध ही मिलेंगी। उस युग के प्रसिद्ध छंद हैं—

दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त आदि। प्रत्येक छंद की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, जिन्हें ध्यान में रखकर उन्हें पढ़ना चाहिए। इससे कविता के नाद-सौन्दर्य का बोध तो होगा ही उसका अर्थ समझने में भी सहायता मिलेगी।

आधुनिक काल की कविताओं में अनेक अतुकांत हैं, जिनमें पंक्तियों की लम्बाई समान नहीं है और अन्त में तुक भी नहीं है। पर इन कविताओं में भी लय का ध्यान रखा गया है। पन्त, निराला आदि की कविताएँ अतुकांत भी हैं पर लय का ध्यान रखकर पढ़ने से उनका ध्वन्यात्मक सौन्दर्य स्पष्ट हो जाता है।

कविता का भाव-सौन्दर्य मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों के चित्रण में है। प्रेम, करुणा, क्रोध, उत्साह आदि मनोभावों का विभिन्न परिस्थितियों में मर्मस्पर्शी वर्णन ही भाव-सौन्दर्य है। कविता पढ़ने में इन भावों की अनुभूति हमारा मुख्य उद्‌देश्य रहता है।

कुछ कवितायें ऐसी मिलेंगी जिनमें नाद-सौन्दर्य या भाव सौन्दर्य की अपेक्षा विचार सौन्दर्य की प्रधानता है, जैसे कबीर की साखियाँ। इनके द्वारा कवि आदर्श जीवन-मूल्यों के प्रति हमें अभिप्रेरित करना चाहता है। ऐसी कविताओं को इसी दृष्टि से पढ़ना चाहिए। कवि सम्मेलनों में और रेडियो पर कवियों के प्रभावशाली वाचन पर ध्यान देना चाहिए। कुछ कवियों की कविताओं के रिकार्ड और टेप भी मिलते हैं जिनका सुविधानुसार उपयोग किया जा सकता है।

वाचन के साथ ही कविता का केन्द्रीय भाव उभर कर सामने आने लगता है। अध्यापक को प्रारम्भ में इस पर कुछ चर्चा करनी चाहिए। इस कविता की मूल प्रेरणा क्या है ? कवि इस कविता में क्या कहना चाहता है ? किन पंक्तियों में इस कविता का केन्द्रीय भाव छिपा है ? आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनसे इस चर्चा में सहायता मिल सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि इन प्रश्नों का उत्तर एक ही हो। बहुधा एक ही कविता विभिन्न व्यक्तियों के मन पर विभिन्न प्रभाव डालती है, इसलिए इस विषय में मतभेद स्वाभाविक है। इससे कवि के आशय को पकड़ने में सहायता मिलती है। यदि सहानुभूति से कविता को पढ़ा जाय तो प्राय: वह अपना आशय स्वयं कह देती है।

इसके बाद कविता को पंक्तिशः देखा जाना चाहिये। अपरिचित शब्दों के अर्थ, अंत:कथा और व्याख्या की अपेक्षा रखने वाले स्थलों पर यहाँ विशेष ध्यान देना वांछनीय होगा। यह विश्लेषण कविता के सौन्दर्य को और अधिक गहराई से अनुभव कराने के लिये होना चाहिए।

कविता को उसके सम्पूर्ण विन्यास में समझने के बाद उसके कलापक्ष पर ध्यान देना चाहिए। सम्पूर्ण कविता की संयोजना, उसकी भाषा, अर्थगर्भित शब्दों, छंद विधान, अलंकार आदि के प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

इसके बाद एक बार फिर कविता का मुखर वाचन करना अच्छा रहेगा। कविता के बाद कवि के विषय में चर्चा उपयोगी होगी। कवि के काल और उसकी परिस्थितियों का कवि पर प्रभाव जानना अच्छा रहता है। कवि के समकालीन अन्य कवियों का सामान्य परिचय उपयोगी होगा। कवि की अन्य रचनाओं को सुनने में छात्र रुचि दिखा सकते हैं।

पठित कविता के समान भाव वाली कविता कक्षा में सुनाई जा सकती है। इसमें कविता के भावों को गहराई से समझने में सहायता मिलती है और कवियों तथा कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने की योग्यता का भी विकास होता है।

भाव-बोध की कसौटी यह है कि पाठक उस भाव की अभिव्यक्ति कर सकें। व्याख्या इसी अभिव्यक्ति का एक रूप है। परीक्षा की दृष्टि से भी व्याख्या करना और उसे विधिवत लिखना उपयोगी होता है। व्याख्या के सन्दर्भ आदि लिखने के पश्चात पहले मूलभाव लिखा जाय और फिर अर्थ स्पष्ट किया जाय। इस अनुक्रम में सुन्दर स्थलों की कुछ विशेष व्याख्या की जानी चाहिए। यदि कोई अंतःकथा हो तो उसे भी लिखना चाहिए।

अच्छी कविताओं को आनन्द के साथ पढ़ते हुए कंठस्थ कर लेना चाहिए। इस प्रकार वे हमारी चेतना का अंग बन जाती हैं। कंठस्थ कविताएँ समाज में सुनाने पर सामूहिक आनन्द देती हैं और अकेले में भी आह्लादित करती हैं।

सन्त कबीर

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में कबीरपंथियों में 'कबीर चरित्र बोध' ग्रंथ के आधार पर यह उक्ति प्रचलित है—

"चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाट ठये।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए ।।"

यद्यपि इस ग्रंथ की प्रामाणिकता संदिग्ध है, फिर भी अन्य प्रमाणों के अभाव में विद्वानों ने संवत् १४५५ विक्रमी को ही इनकी जन्मतिथि माना है। इनकी मृत्यु के संबंध में अनेक विवाद हैं; पर अधिकतर विद्वानों ने सं० १५५१ माना है। कबीर के गुरु के संबंध में भी एक प्रवाद है। कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी, पर वैसा कोई व्यक्ति मिल नहीं रहा था। एक समय अँधेरे में कबीर गंगातट पर सोये हुए थे, उधर से स्वामी रामानन्दजी गंगा स्नान के लिए गुजरे और उनका पाँव इन पर पड़ गया। स्वामी रामानन्दजी राम-राम कह बैठे। बस तभी से कबीर ने रामानन्द को अपना गुरु मान लिया। कुछ लोग इनको सूफी सन्त शेख तकी का शिष्य मानते हैं।

कबीर अपने युग के सबसे महान समाज सुधारक, प्रतिभा-सम्पन्न एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे। ये अनेक प्रकार के विरोधी संस्कारों में पले थे। नाथ सम्प्रदाय के योग मार्ग और हिन्दुओं के वेदान्त और भक्ति-मार्ग का इन पर गहरा प्रभाव था। ये किसी भी बाह्य आडंबर, कर्मकाण्ड और पूजापाठ की अपेक्षा पवित्र, नैतिक और सादे जीवन को अधिक महत्त्व देते थे। सत्य, अहिंसा, दया तथा संयम से युक्त धर्म के सामान्य स्वरूप में ही ये विश्वास करते थे। जो भी संप्रदाय इन मूल्यों के विरुद्ध कहता था, उसका ये निर्ममता से खण्डन करते थे। इसी से इन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों के रूढ़िगत विश्वासों एवं धार्मिक कुरीतियों का विरोध किया है।

कबीर निर्गुण एवं निराकार ईश्वर के उपासक थे। इनके अनुसार ज्ञान और योग की साधना से ही उस महान शक्ति का साक्षात्कार संभव था। इस साक्षात्कार से जिस अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, उस आनन्द का तथा उसके आलम्बन (ईश्वर) का वर्णन ही कबीर की भक्ति का स्वरूप है। इस भक्ति-भावना में निर्वेद और वैराग्य की प्रधानता है।

कबीर की भक्ति में रहस्यवाद की झलक भी स्पष्ट दिखायी देती है। जीव रूप में स्वयं को पत्नी मानकर पति-रूप भगवान के प्रति उन्होंने अपने प्रेम की व्यंजना की है।

माधुर्य भाव की इस भक्ति में कबीर के हृदय के आनन्द और उल्लास के दर्शन होते हैं। इसमें प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अत्यन्त मार्मिक एवं सुन्दर व्यंजना हुई है। साथ ही नाथ सम्प्रदाय की हठयोग साधना की अनेकानेक विचित्र दशाओं का भी वर्णन कबीर ने किया है। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, अनहद नाद, कुण्डली, चक्र आदि का वर्णन नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण है।

'मसि कागद छूयो नहीं' कह कर कबीर अपने अपढ़ होने की सूचना देते हैं। इन्होंने काव्य-शास्त्र का अध्ययन नहीं किया था। कबीर को छन्दों का ज्ञान नहीं था, पर छंदों की स्वच्छन्दता ही कबीर काव्य की सुन्दरता बन गयी है। अलंकारों का चमत्कार दिखाने की प्रवृत्ति कबीर में नहीं है, पर इनका स्वाभाविक प्रयोग हृदय को मुग्ध कर लेता है। इनकी कविता में अत्यन्त सरल और स्वाभाविक भाव एवं विचार-सौन्दर्य के दर्शन होते हैं।

कबीर की भाषा में पंजाबी, राजस्थानी, अवधी आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों की खिचड़ी मिलती है। सहज भावाभिव्यक्ति के लिए ऐसी ही लोकभाषा की आवश्यकता भी थी; इसीलिए कबीर ने साहित्य की अलंकृत भाषा को छोड़कर लोकभाषा को अपनाया। कबीर की साखियों की भाषा अत्यन्त सरल और प्रसाद गुण सम्पन्न है। कहीं-कहीं सूक्तियों का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होता है। हठयोग और रहस्यवाद की विचित्र अनुभूतियों का वर्णन करते समय कबीर की भाषा में लाक्षणिकता आ गयी है। ऐसे स्थलों पर संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से बात कही गयी है। कुछ अद्भुत अनुभूतियों को कबीर ने विरोधाभास के माध्यम से उलटवासियों की चमत्कारपूर्ण शैली में व्यक्त किया है जिससे कहीं-कहीं दुर्बोधता आ गयी है। 'बीजक', 'कबीर-ग्रंथावली' और 'कबीर-वचनावली' में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं।

कबीर के काव्य का सर्वाधिक महत्त्व धार्मिक एवं सामाजिक एकता और भक्ति का संदेश देने में है। कबीर ने तत्कालीन हिन्दी साहित्य और समाज को नवीन चेतना और नूतन जीवनदर्शन प्रदान किया। इनका संदेश पवित्र जीवन एवं बाह्य आडम्बर से रहित सहज भक्ति का संदेश था। इसीलिए हिन्दी के आलोचक और विद्वान इन्हें समाज-सुधारक मानते हैं। पर कबीर के इस रूप में इनका युगप्रवर्तक महाकवि का रूप भी छिपा हुआ है।

साखी

बलिहारी गुरू आपणैं, द्योहाड़ी कै बार ।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ।।१।।

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार ।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार ।।२।।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहुणाँ, बहुरि न आवौं हट्ट ।।३।।

बूड़ थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि ।
भेरा देख्या जरजरा, ऊतरि पड़े फरंकि ।।४।।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास ।
जे कुछ चितवै राम बिन, सोइ काल की पास ।।५।।

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ ।
बारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ ।।६।।

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जाके सँग तैं बीछुड़्या, ताही के सँग लागि ।।७।।

केसौ कहि कहि कूकिये, ना सोइये असरार ।
राति दिवस कै कूकणैं, कबहूँ लगै पुकार ।।८।।

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार ।
कहौ संतौ क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार ।।९।।

यहु तन जारौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ ।
लेखणि करूँ करंक की, लिखि-लिखि राम पठाऊँ ॥१०॥

कै बिरहनि कूँ मींच दे, कै आपा दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणा, मोपै सह्या न जाइ ॥११॥

कबीर रेख स्यँदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥१२॥

सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाहिं ।
कबीर मोती नीपजैं, सुन्नि सिषर गढ़ माँहिं ॥१३॥

पाणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ ॥१४॥

पंखि उड़ाणीं गगन कूँ, प्यंड रह्या परदेस ।
पाणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस ॥१५॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास ।
मुखि कस्तूरी महमही, बाणी फूटी बास ॥१६॥

नैनां अन्तरि आव तुँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेउँ ।
ना हौं देखौं और कूँ, ना तुझ देखन देउँ ॥१७॥

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१८॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूँद समानी समद में, सो कत हेरी जाइ ॥१९॥

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माहिं ॥२०॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं ।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहिं ॥२१॥

पदावली

दुलहनीं गावहु मंगलचार,
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ।
तन रति करि मैं, मन रति करिहूँ पंचतत बराती ।
रामदेव मोरै पांहुनैं आये, मैं जोबन मैंमाती ॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ ब्रह्मा बेद उचार ।
रामदेव संग भांवरि लैहूँ, धनि धनि भाग हमार ॥
सुर तैतीसूँ कौतिग आये, मुनियर सहस अठ्यासी ।
कहै कबीर हमैं ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥१॥

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घरि बैठे आये ॥
मंगलचार माँहि मन राखौं, राम रसाइण रसना चाषौं ।
मंदिर माँहि भया उजियारा, लै सूती अपनाँ पीव पियारा ॥
मैं रनिरासी जे निधि पाई, हमहिं कहा यहु तुमहिं बड़ाई ।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हाँ, सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हाँ ॥२॥

संतौ भाई आई ग्यान की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उड़ाणीं, माया रहै न बाँधी रे ।
दुचिते की दोइ थुनीं गिरानीं, मोह बलींडा टूटा ।
त्रिस्नां छानि परी घर ऊपरि, कुबधि का भाँडा फूटा ॥

जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी।
आँधी पीछैं जो जल बूठा, प्रेम हरी जन भीनाँ।।
कहै कबीर भाँन के प्रगटे, उदित भया तम षीनाँ।।३।।

पंडित बाद बदंते झूठा।
राम कह्याँ दुनियाँ गति पावै, खाँड कह्याँ मुख मीठा।
पावक कह्याँ पाँव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्याँ भूषि जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई।।
नर के साथ सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जाणै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जँगल मैं, बहुरि न सुरतैं आणै।।
साँची प्रीति विषै माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हाँसी।
कहै कबीर प्रेम नहिं उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुरि जासी।।४।।

हम न मरैं मरिहै संसारा।
हम कूँ मिल्या जियावनहारा।
अब न मरौं मरनैं मन माना, तेई मूए जिनि राम न जाना।
साकत मरैं संत जन जीवैं, भरि भरि राम रसाइन पीवैं।।
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरैं हम काहे कूँ मरिहैं।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा।।५।।

काहे री नलनीं तूँ कुम्हिलानी,
तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनी तोर निवास।।
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि।।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान।।६।।

(कबीर ग्रंथावली से)

प्रश्न–अभ्यास

१. साखी से क्या अभिप्राय है ? कबीर के दोहों को साखी कहने का क्या औचित्य है ?
२. 'काहे रे नलनीं तूं कुम्हिलानी···' इस पद का भाव स्पष्ट कीजिए ।
३. गुरु के स्वरूप और महत्व पर कबीर के विचार स्पष्ट कीजिए ।
४. 'रहस्यवाद' का क्या अर्थ है ? उदाहरण देते हुए कबीर के रहस्यवाद का निरूपण कीजिए ।
५. कबीर की भाषा का विवेचन कीजिए ।
६. 'हेरत हेरत हे सखी' साखी का भाव स्पष्ट कीजिए ।
७. संकलित अंशों के आधार पर कबीर के प्रेमसंबंधी विचारों का निरूपण कीजिए ।
८. "कबीर की रचनाओं का महत्व उनमें अन्तर्निहित संदेश के कारण है ।' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?
९. निम्नलिखित साखियों की विशद व्याख्या कीजिए—
   १—दीपक दीया······हट्ट ।
   २—पाणी ही तैं······जाइ ।

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म सन् १४९२ ई० के लगभग हुआ था। कुछ लोग गाजीपुर को और कुछ जायस को इनका जन्मस्थान मानते हैं। पर यह निर्विवाद है कि इनके जीवन का अधिकांश भाग जायस में ही बीता था। इसी से ये 'जायसी' कहे जाते हैं। जायसी सूफी सन्त थे। शरीर से कुरूप थे, पर इनका हृदय पवित्र एवं निर्मल था। मानव मात्र के प्रति सहृदयता और प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हो जायसी ने मानव-हृदय की उस अवस्था के दर्शन कराये, जहाँ सभी धर्मों और सम्प्रदायों के भेदभाव तिरोहित हो जाते हैं और मनुष्य ऐक्य, प्रेम एवं सहानुभूति का अनुभव करता है।

'पदमावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'चित्ररेखा' आदि जायसी की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें 'पदमावत' सर्वोत्कृष्ट है और वही जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इस ग्रन्थ का प्रारंभ १५२० ई० में हुआ था और समाप्ति १५४० ई० में। जायसी की मृत्यु सन् १५४२ ई० में हुई मानी जाती है।

जायसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और उसकी प्राप्ति के लिए 'प्रेम' की साधना में विश्वास रखते थे। इस प्रेममार्ग में उन्होंने विरह पर सर्वाधिक बल दिया है। अपने प्रिय (ईश्वर) से वियोग की तीव्र अनुभूति भक्त को साधना-पथ पर अग्रसर होने को प्रेरित करती है। अपनी इसी भक्ति-भावना को उन्होंने 'पदमावत' में व्यक्त किया है।

जायसी ने 'पदमावत' में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। एक ओर तो इतिहास और कल्पना के सुन्दर संयोग से यह एक उत्कृष्ट प्रेम-गाथा है, और दूसरी ओर इसमें आध्यात्मिक प्रेम की भी अत्यन्त भावमयी अभिव्यंजना है। इस प्रकार की रचनाओं को हमारे यहाँ 'प्रेमाख्यान' कहा गया है। निचश्य ही जायसी का 'पदमावत' हिन्दी का श्रेष्ठ प्रेमाख्यान काव्य-ग्रन्थ है।

जायसी का विरह-वर्णन अत्यन्त विशद एवं मर्मस्पर्शी है। संयोग-काल की रूपगर्विता नागमती विरह में अत्यन्त सामान्य नारी बन जाती है। वह अपने हृदय की विरह-व्यथा की व्यंजना रानी के रूप में नहीं, अपितु नारी-जीवन की सर्वसामान्य अनुभूतियों के माध्यम से करती है। नागमती प्रकृति और जगत की प्रत्येक क्रिया को सजग होकर देखती है। बाहरी जगत का उल्लास उसे अपनी संयोगावस्था की याद दिलाता है तथा वियोग-

व्यथा को और भी तीव्र कर देता है। 'षड़्ऋतु वर्णन' और 'बारहमासा' जायसी के संयोग एवं विरह वर्णन के अत्यन्त मार्मिक स्थल हैं। जायसी रहस्यवादी कवि हैं, इन्होंने ईश्वर और जीव के पारस्परिक प्रेम की व्यँजना दाम्पत्य-भाव के रूप में की हैं। रत्नसेन जीव है तथा पद्मावती परमात्मा। यह सूफी पद्धति है। 'पदमावत' में पुरुष (रत्नसेन) प्रियतमा (पद्मावती) की खोज में निकलता है। जायसी ने इस प्रेम की अनुभूति की व्यंजना रूपक के आवरण में की है। इन्होंने साधनात्मक रहस्यवाद का चित्रण भी किया है, जिसकी प्रधानता कबीर में दिखायी देती है। जायसी ने सम्पूर्ण प्रकृति में पद्मावती के सौन्दर्य को देखा है तथा प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को उस परम सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए आतुर और प्रयत्नशील दिखाया है। यह प्रकृति का रहस्यवाद कहलाता है। जायसी की भाँति कबीर में यह भावात्मक प्रकृतिमूलक रहस्यवाद देखने को नहीं मिलता।

'पदमावत' महाकाव्य विरहानुभूति के मार्मिक वर्णन और अलौकिक सौन्दर्य की उत्कृष्ट अभिव्यंजना के कारण अत्यन्त भावपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी हो गया है। जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण जायसी के काव्य में हुआ है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्यका मर्मस्पर्शी वर्णन नख-शिख-वर्णन पद्धति पर हुआ है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग पक्ष के हृदयहारी एवं मार्मिक चित्र पदमावत में देखे जा सकते हैं। गोरा-बादल के युद्ध वाले प्रसंग में वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों की सुन्दर व्यंजना हुई है। आध्यात्मिकता की गंगा में नहाई यह प्रेम-कथा शान्तरस की दिव्य अनुभूति में पाठक को निमग्न कर देती है। इस प्रकार सौन्दर्य, प्रेम, रहस्यानुभूति, भक्ति आदि की अभिव्यंजना से पुष्ट जायसी के काव्य का भावपक्ष बड़ा सबल है।

जायसी की भाषा अवधी है। उसमें बोलचाल की लोकभाषा का उत्कृष्ट भावाभिव्यंजक रूप देखा जा सकता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से उसमें प्राणप्रतिष्ठा हुई है। अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक है। केवल चमत्कारपूर्ण कथन की प्रवृत्ति जायसी में नहीं है। मसनवी शैली पर लिखी "पदमावत" में प्रबंध काव्योचित सोष्ठव विद्यमान। दोहा और चौपाई जायसी के प्रधान छन्द हैं।

नागमती-वियोग-वर्णन

नागमती चितउर पथ हेरा । पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ॥
नागर काहु नारि बस परा । तेइ मोर पिउ मोसौं हरा ॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ । पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ ॥
भयउ नरायन बावन करा । राज करत राजा बलि छरा ॥
करन पास लीन्हेउ कै छंदू । बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू ॥
मानत भोग गोपिचंद भोगी । लेइ अपसवा जलंधर जोगी ॥
लै कान्हहि भा अकरूर अलोपी । कठिन बिछोह,जियहिं किमि गोपी?

> सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?
> झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह ॥१॥

पिउ बियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा निति बोलै 'पिउ पीऊ' ॥
अधिक काम दाधे सो रामा । हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा ॥
बिरह बान तस लाग न डोली । रकत पसीज, भींजि गइ चोली ॥
सूखा हिया, हार भा भारी । हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी ॥
खन एक आव पेट महँ ! साँसा । खनहिं जाइ जिउ,होइ निरासा ॥
पवन डोलावहिं, सीचहिं चोला । पहर एक समुझहिं मुख बोला ॥
प्रान पयान होत को राखा ? को सुनाव पीतम कै भाखा ?

> आहि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि ।
> हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि ॥२॥

पाट महादेइ ! हिये न हारू । समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू ॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा । सँवरि नेह मालति पहँ आवा ॥
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती । टेकु पियास, बाँधु मन थीती ॥
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा । पलटि आव बरषा ऋतु मेहा ॥
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली । सो रस, सो मधुकर, सो बेली ॥

जिनि अस जीव करसि तू बारी । यह तरिवर पुनि उठिहि सँवारी ।।
दिन दस बिनु जल सूखि विधंसा । पुनि सोइ सरवर, सोई हंसा ।।

मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत ।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ।।३।।

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा । साजा विरह दुंद दल बाजा ।।
धूम साम, धौरे घन धाए । सेत धजा बग पाँति देखाए ।।
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा । बुंद बान बरसहिं घन घोरा ।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी । कंत ! उबारु मदन हौं घेरी ।।
दादुर मोर कोकिला पीऊ । गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ।।
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा ?
अद्रा लाग लागि भुइँ लेई । मोहिं बिनु पिउ को आदर देई ?

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब ।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब ।।४।।

सावन बरस मेह अति पानी । भरनि परी, हौं बिरह झुरानी ।।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा । भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा ।।
रकत कै आँसु परहिं भुइ टूटी । रेंगि चलीं जस बीरबहूटी ।।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला । हरियरि भूमि कुसुंभी चोला ।।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा । बिरह झुलाइ देइ झकझोरा ।।
बाट असूझ अथाह गँभीरी । जिउ बाउर भा, फिरै भँभीरी ।।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी । मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ।।

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बनढाँख ।
किमि कै भेंटों कन्त तुम्ह? ना मोहि पाँव न पाँख ।।५।।

भा भादों दूभर अति भारी । कैसे भरौं रैनि अँधियारी ।।
मंदिर सून पिउ अनतै बसा । सेज नागिनी फिरि फिरि डसा ।।
रहौं अकेलि गहे एक पाटी । नैन पसारि मरौं हिय फाटी ।।

चमक बीजु घन गरजि तरासा । बिरह काल होइ जीउ गरासा ॥
बरसै मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी ॥
धनि सूखै भरे भादौं माहाँ । अबहुँ न आएन्हि सीचेन्हि नाहाँ ॥
पुरवा लाग भूमि जल पूरी । आक जवास भई तस झूरी ॥

थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक ।
धनि जोवन अवगाह महँ, दे बूड़त, पिउ ! टेक ॥६॥

लाग कुँवार, नीर जग घटा । अबहुँ आउ, कंत ! तन लटा ॥
तोहि देखे पिउ ! पलुहै कया । उतरा चीतु बहुरि करु मया ॥
चित्रा मित्र मीन घर आवा । पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥
उआ अगस्त, हस्ति घन गाजा । तुरय पलानि चढ़े रन राजा ॥
स्वाति बूँद चातक मुख परे । समुद सीप, मोती सब भरे ॥
सँरवर सँवरि हंस चलि आए । सारस कुरलहिं, खँजन देखाए ॥
भा परगास, काँस बन फूले । कंत न फिरे बिदेसहिं भूले ॥

बिरह हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर ।
बेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर ॥७॥

कातिक सरद चंद उजियारी । जग सीतल, हौं बिरहै जारी ॥
चौदह करा चाँद परगासा । जनहुँ जरैं सब धरति अकासा ॥
तन मन सेज जरै अगिदाहू । सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू ॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा । जौं घर नाहीं कंत पियारा ॥
अबहूँ, निठुर! आउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा ॥
सखि झूमक गावैं अँग मोरी । हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी ॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा । मो कहँ बिरह, सवति दुख दूजा ॥

सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि ।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि ॥८॥

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी । दूभर रैनि, जाइ किमि गाढ़ी?
अब यहि बिरह दिवस भा राती । जरौं बिरह जस दीपक बाती ॥

काँपै हिया जनावै सीऊ। तो पै जाइ होइ सँग पीऊ ॥
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप रँग लेइगा नाहू ॥
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई ॥
सियरि अगिनि बिरहिन हिय जारा। सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा ॥
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जनम करै भसमंतू ॥

पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग !
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग ॥९॥

पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरुजु जाइ लंका दिसि चाँपा ॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ ॥
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे ॥
सौंर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी ॥
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला ॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पंखी ॥
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा ॥

रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीऊ समेटहि पंख ॥१०॥

लागेउ माँघ, परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला ॥
पहल पहल तन रूईं झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै ॥
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा ॥
एहि माह उपजै रसमूलू। तू सो भौंर, मोर जोबन फूलू ॥
नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू ॥
टप टप बूँद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला ॥
केहि क सिंगार को पहिरु पटोरा। गीउ न हार, रही होइ डोरा ॥

तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उड़ावा झोल ॥११॥

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा ॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा ॥
तरिवर झरहिं, झरहिं बन ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा ॥
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू ॥
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी ॥
जो पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहि रोष न आवा ॥
राति दिवस सब यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे ॥

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन ! उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरैं जहँ पाव ॥१२॥

चैत बसंता होइ धमारी। मोहि लेखे संसार उजारी ॥
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौं बन ढारैं ॥
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता ॥
बौरे आम फरै अब लागे। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे ॥
सहस भाव फूलीं बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती ॥
मो कहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे ॥
फरि जोबन भए नारँग साखा। सुआ बिरह अब जाइ न राखा ॥

घिरिनि परेवा होइ पिउ ! आउ बेगि परु टूटि।
नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि ॥१३॥

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी ॥
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ हाँका ॥
जरत बजागिनि करु, पिउ छाहाँ। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करु फुलवारी ॥
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिर फिर भूँजेसि, तजेउँ न बारू ॥
सुरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई ॥
बिहरत हिया करहु, पिउ ! टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका ॥

कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ ।
कबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौं पिउ सींचैं आइ ॥१४॥

जेठ जरै जग, चलै लुवारा । उठहिं बवंडर परहिं अँगारा ॥
बिरह गाजि हनुवंत होइ जागा । लंका-दाह करै तनु लागा ॥
चारिहु पवन झकौरै आगी । लंका दाहि पलंका लागी ॥
दहि भइ साम नदी कालिंदी । बिरह के आगि कठिन अति मंदी ॥
उठै आगि औ आवै आँधी । नैन न सूझ, मरौ दुख बाँधी ॥
अधजर भइउँ, माँसु तनु सूखा । लागेउ बिरह काल होइ भूखा ॥
माँसु खाइ सब हाड़न्ह लागै । अबहुँ आउ, आवत सुनि भागै ॥

गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रवि, सहि न सकहिं वह आगि ।
मुहमद सती सराहिये, जरै जो अस पिउ लागि ॥१५॥

तपै लागि अब जेठ असाढ़ी । मोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढ़ी ॥
तन तिनउर भा, झूरौं खरी । भइ बरखा, दुख आगरि जरी ॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई । बात न आव कहौं का रोई ?
साँठि नाठि जग बात को पूछा ? बिनु जिउ फिरै मूँज तनु छूँछा ॥
भई दुहेली टेक बिहूनी । थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी ॥
बरसै मेघ चुवहिं नैनाहा । छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा ॥
कोरौं कहाँ ठाट नव साजा ? तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा ॥

अबहूँ मया दिस्टि करि, नाह निठुर ! घर आउ ।
मँदिर उजार होत है, नव कै आइ बसाउ ॥१६॥

(पदमावत से)

प्रश्न–अभ्यास

१. "प्रकृति के बदलते हुए स्वरूप के साथ नागमती की विरह-व्यंजना का स्वरूप भी बदलता रहा है।" इस कथन की समीचीन व्याख्या कीजिए।
२. नागमती के विरह-वर्णन की मर्मस्पर्शिता का क्या रहस्य है? स्पष्ट कीजिए।
३. जायसी ने नागमती को राजरानी के रूप में नहीं सामान्य नारी के रूप में रुदन करते हुए दिखाया है। इसका क्या रहस्य है?
४. संकलित अंश की भाव और कला की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।
५. जायसी के काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्तियों का निरूपण कीजिए।
६. संकलित अंश से चार स्थल ऐसे चुनें, जहाँ रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
७. कौन-से मास अथवा ऋतु का बिम्ब आपको सबसे अधिक मर्मस्पर्शी लगता है? उस बिम्ब का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपनी रुचि के कारण की व्याख्या कीजिए।
८. नागमती के विरह-वर्णन के आधार पर जायसी के काव्य-सौष्ठव का निरूपण कीजिए।
९. "फागु करहिं सब चाँचरि.."
इस पंक्ति की भाव-व्यंजना की दृष्टि से विशद व्याख्या कीजिए।

सूरदास

महाकवि सूरदास का जन्म सं० १५३५ वि० माना जाता है। आगरा के समीपवर्ती रुनकता नामक ग्राम के ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि यह जन्मान्ध थे। भगवद्-भक्ति की इच्छा से सूर अपने पिता की अनुमति प्राप्त कर यमुना के तट पर गऊघाट पर रहने लगे। वृन्दावन की तीर्थयात्रा पर जाते हुए इनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य से हुई, जिनसे सूरदास ने दीक्षा ली। महाप्रभु इन्हें अपने साथ ले गये और गोवर्धन पर स्थापित मंदिर में अपने आराध्य श्रीनाथजी की सेवा में इन्हें कीर्तन करने को नियुक्त किया। सूर नित्य नया पद बनाकर और इकतारे पर गाकर भगवान की स्तुति करते थे। कहा जाता है कि इन्होंने सवालाख पद रचे, जिनमें से लगभग दस सहस्र ही अब तक उपलब्ध हो सके हैं, परन्तु यह संख्या भी इन्हें हिन्दी का श्रेष्ठ महाकवि सिद्ध करने में पर्याप्त है। इनका गोलोकवास लगभग संवत् १६४० में हुआ था।

सूरदास के पदों का संग्रह 'सूरसागर' है। 'साहित्यलहरी' इनका दूसरा प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ है। सूरदास द्वारा रचित 'गोवर्धन लीला', 'नाग लीला', 'पद संग्रह', 'सूर पचीसी' आदि ग्रंथ भी प्रकाश में आये हैं। परन्तु सूर 'सूरसागर' से ही जगत्-विख्यात हुए हैं।

'सूरसागर' के वर्ण्य-विषय का आधार 'श्रीमद्भागवत' है। फिर भी इनके साहित्य में अपनी मौलिक उद्भावनाएँ हैं। सूर ने भागवत के कथा-चित्रों में न केवल सरसता तथा मधुरता का संचार किया है अपितु अनेक नवीन प्रकरणों का सृजन भी किया है। राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर सूर ने जो रस का समुद्र उमड़ाया है, इसीसे इनकी रचना का नाम सूरसागर सार्थक होता है। श्रृंगार के ये अप्रतिम कवि हैं। इनके अतिरिक्त किसी अन्य कवि ने श्रृंगार के दोनों विभागों—संयोग एवं विप्रलम्भ—का इतना उत्कृष्ट वर्णन नहीं किया। इनका बाल-वर्णन बाल्यावस्था की चित्ताकर्षक झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के पदों में उल्लास, उत्कंठा, चिंता, ईर्ष्या आदि भावों की जो अभिव्यक्ति हुई है वह बड़ी स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक तथा हृदयग्राही है। वात्सल्य के क्षेत्रों में तो सूर संसार की सभी भाषाओं के सभी कवियों से कहीं आगे हैं। भ्रमर-गीत सूरदास की अनूठी कल्पना है। इसमें उन्होंने ज्ञान और योग के आडम्बर को दूर कर प्रेम और भक्ति के महत्त्व को प्रकाशित किया है।

व्रजभाषा सूर के हाथों से जिस सौष्ठव के साथ ढली है, वैसा सौन्दर्य उसे विरले ही कवि दे सके। जन्म से लेकर किशोरावस्था तक का कृष्ण का चरित्र-चित्रण तो "स्वर्ग को भी ईर्ष्यालु" बनाने की क्षमता रखता है। बाललीलाओं के विशद वर्णन, गोचारण, वन से प्रत्यागमन, माखन-चोरी आदि के ललित पदों में नवनीत-प्रिय बालक कृष्ण की मधुर मूर्ति की प्रतिष्ठा करने वाली माखन जैसी सुग्राह्य पंक्तियाँ सूर के पदों के अतिरिक्त और कहाँ मिलेंगी ?

भावविभोर और आत्मविस्मृत गोपियों के "दही ले" के स्थान पर "कृष्ण ले" कहते हुए गलियों में घूमते-फिरते, गोपियों का तीर-कमान लिये वनों-उपवनों में "पिकचातकों" को बसेरा न ले पाने के हेतु मारी-मारी फिरते, प्रेम की तल्लीनता के जो सजीव उदाहरण सूर-साहित्य में मिलते हैं वे निस्संदेह अन्यत्र दुर्लभ हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विटठलनाथ ने चार और अपने पिता के चार अपने शिष्यों को मिलाकर आठ बड़े भक्त कवियों का 'अष्ट छाप' बनाया था। सूर उन कवियों में अग्रगण्य हैं। वास्तव में कृष्ण-भक्त कवियों में सूर की रचना श्रीमद्भागवत जैसा सम्मानित स्थान पाती रहेगी। शब्दों द्वारा अपने चरित्र-नायक की माधुर्यमयी मूर्ति को पाठकों के नयनों के सम्मुख उपस्थित करने में सूर की सफलता अद्वितीय है। सूर ने तत्कालीन परिस्थितियों से खिन्न समाज का मन भगवान की हँसती-खेलती, लोकरंजक मूर्ति दिखाकर बहलाया और इस प्रकार आगे चलकर भगवान के लोकरक्षक स्वरूप की प्रतिष्ठा के हेतु बड़ी ही अच्छी पृष्ठभूमि उपस्थित की।

विनय

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान ?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान ।।१।।

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज कौ पच्छी, फिरि जहाज पर आवै।
कमल-नैन कौ छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।२।।

वात्सल्य

हरि जू की बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि-मनोज-सोभा-हरनि।
भुज भुजंग, सरोज नैननि, वदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि।
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरयौ अद्‌भुत फरनि।
चलत पद-प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट-सुभग-छबि भरि लेति उर जनु धरनि।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि ।।३।।

रूप-माधुरी

देखि सखी अधरनि की लाली।
मनि मरकत तैं सुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली।
मनौं प्रात की घटा साँवरी, तापर अरुन प्रकास।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहत है, फहरत पीत सुबास।
कीधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि, जुग फल बिंब सुपाके।
नासा कीर आइ मनु बैठ्यौ, लेत बनत नहिं ताके।
हँसत दसन इक सोभा उपजति, उपमा जदपि लजाइ।
मनो नीलमनि-पुट मुकुता-गन, बंदन भरि बगराइ।
किधौं बज्र-कन, लाल नगनि खँचि,तापर बिद्रुम पाँति।
किधौं सुभग बंधूक-कुसुम-तर, झलकत जल-कन-काँति।
किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी, सुन्दरताई जाइ।
सूर अरुन अधरनि की सोभा, बरनत बरनि न जाइ ॥४॥

कोउ माई लहै री गोपालहिं।
दधि कौ नाम स्यामसुन्दर-रस, बिसरि गयौ ब्रज-बालहिं।
मटुकी सीस,फिरति ब्रज-बीथिनि,बोलति बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत,चित लाग्यौ नँद-लालहिं।
हँसति, रिसाति, बुलावति,बरजति देखहु इनकी चालहिं।
सूर स्याम बिनु और न भावै, या बिरहिनि बेहालहिं ॥५॥

मुरली-माधुरी

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदलालहिं,नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति।

अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति ।
आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर, कर-पल्लव पलुटावति ।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति ।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति

मुरली हरि कौं नाच नचावति ।
एते पर यह बाँस-बँसुरिया नँन-नंदन कौं भावति ।
ठाढ़े रहत बस्य ऐसे ह्वै, सकुचत बोलत बात ।
यह निदरे आज्ञा करवावति, नैकुँहुँ नाहिं लजात ।
जब जानति आधीन भए हैं, देखति ग्रीव नवावत ।
पौढ़ति अधर, चलित कर-पल्लव रंध्र-चरन पलुटावत ।
हम पर रिस करि-करि अवलोकत,नासा-पुट फरकावत ।
सूर-स्याम जब-जब रीझत हैं, तब-तब सीस डुलावत ॥७॥

यशोदा-वचन

जसोदा बार बार यौं भाष ।
है कोउ ब्रज मैं हितू हमारौ चलत गुपालहिं राखै ॥
कहा काज मेरे छगन मगन कौं नृप मधुपुरी बुलायौ ।
सुफलक-सुत मेरे प्रान हरन कौं काल रूप ह्वै आयौ ॥
बरु यह गोधन हरौ कंस सब मोहिं बंदि लै मेलौ ।
इतनोई सुख कमलनयन मेरी अँखियनि आगैं खेलौ ॥
बासर बदन बिलोकत जीवौं निसि निज अंकम लाऊँ ।
तिहिं बिछुरत जौ जियौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ ॥
कमलनयन गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानौ ।
सूर कहाँ लगि प्रगटि जनाऊँ,दुखित नंद जु की रानी ॥८॥

भ्रमर-गीत

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
हँस-सुता की सुंदर कगरी, अरु कुञ्जनि की छाँहीं ।
वै सुरभी वै बच्छ दोहिनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल,नाचत गहि गहि बाहीं ।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि-मुक्ताहल जाहीं ।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की,जिय उमगत तन नाहीं ।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं ।।९।।

बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजैं ।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईं बिषम ज्वाल की पुंजैं ।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत,बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजैं ।
पवन, पान,घनसार,सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भईं भुंजैं ।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग जोवत अँखियाँ भईं छुंजैं ।।१०।।

हमारैं हरि हारिल की लकरी ।
मनक्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी ।
जागत-सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह-कान्ह जकरी ।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौं करुई ककरी ।
सु तौ ब्याधि हमकौं लै आए, देखी सुनी न करी ।
यह तौ सूर तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी ।।११।।

हमरैं कौन जोग बिधि साधै ।
बटुआ, झोरी, दंड, अधारी, इतननि को आराधै ॥
जाकौ कहूँ थाह गहि पैये, अगम अधार अगाधै ।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर, इते बाँध को बाँधै ॥
सुनु मधुकर जिनि सरबस चाख्यौ, क्यौं सचु पावत आधै ।
सूरदास मानिक परिहरि कै, छार गाँठि को बाँधै ॥१२॥

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं ।
अबला सार-ज्ञान कह जानैं, कैसैं ध्यान धराहीं ।
तेई मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं ।
स्रवन चीरि सिर जटा बधावहु, ये दुख कौन समाहीं ।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं ।
जोगी भ्रमत जाहि लगि भूले, सो तौ है अप माहीं ।
सूर स्याम तैं न्यारी न पल-छिन, ज्यौं घट तैं परछाहीं ॥१३॥

लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि, कैसे छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित, अन्तरगति लूटत ॥
वह चितवनि वह चाल मनोहर, वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि ।
नटवर भेष नन्द-नन्दन कौ वह विनोद, वह बन तैं आवनि ॥
चरन कमल की सौंहैं करति हौं, यह सँदेस मोहि बिष सम लागत ।
सूरदास पल मोहि न बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत ॥१४॥

तब तैं इन सबहिनि सचु पायौ ।
जब तैं हरि सँदेस तुम्हारौ सुनत ताँवरौ आयौ ।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायौ ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतो जु जिय बिसरायौ ।
ऊँचे बैठि बिहँग सभा मैं सुक बनराइ कहायौ ।
किलकि-किलकि कुल सहित आपनैं, कोकिल मंगल गायौ ।
निकसि कन्दराहू तैं केहरि पूँछ मूँड़ पर ल्यायौ ।
गहवर तैं गजराज आइकै, अंगहिं गर्व बढ़ायौ ।
अब जनि गहरु करहु हो मोहन, जो चाहत हौ ज्यायौ ।
सूर बहुरि ह्वैहै राधा कौं, सब बैरिन कौ भायौ ।।१५।।

कहत कत परदेशी की बात ।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसौं, हरि अहार चलि जात ।
ससि रिपु बरष, सूर रिपु जुग बर, हर-रिपु कीन्हौ घात ।
मघ पंचक लै गयौ साँवरौ, तातैं अति अकुलात ।
नखत, वेद, ग्रह, जोरि, अर्ध करि सोइ बनत अब खात ।
सूरदास बस भई बिरह के, कर मींजैं पछितात ।।१६।।

निसि दिन बरषत नैन हमारे ।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे ।
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे ।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे ।
आँसू सलिल सबै भई काया, पल न जात रिस टारे ।
सूरदास-प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैं बिसारे ।।१७।।

ऊधौ भली भई ब्रज आए ।
बिधि कुलाल कीन्हे काँचे घट ते तुम आनि पकाए ।
रंग दीन्हौं हो कान्ह साँवरैं, अँग-अँग चित्र बनाए ।
पातैं गरे न नैन नेह तैं, अवधि अटा पर छाए ।
ब्रज करि अँवा जोग ईंधन करि,सुरति आनि सुलगाए ।
फूंक उसास बिरह प्रजरनि सँग,ध्यान दरस सियराए ।
भरे सँपूरन सकल प्रेम-जल, छुवन न काहू पाए ।
राज काज तैं गए सूर प्रभु, नंद नँदन कर लाए ।।१८।।

उपमा नैन न एक रही ।
कवि जन कहत कहत सब आए, सुधि करि नाहिं कही ।
कहि चकोर बिधु-मुख बिनु जीवत,भ्रमर नहीं उड़ि जात ।
हरि-मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात ।
ऊधौ बधिक ब्याध ह्वै आए, मृग सम क्यौं न पलात ।
भागि जाहिं बन सघन स्याम मैं, जहाँ न कोऊ घात ।
खंजन मन-रंजन न होहिं ये, कबहुँ नहीं अकुलात ।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ।
प्रेम न होइ कौन बिधि कहियै, झूठैं हीं तन आँड़त ।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ।।१९।।

अँखियाँ हरि दरसन की भूखीं ।
कैसैं रहतिं रूप-रस राँची, ये बतियाँ सुनि रूखीं ।
अवधि गनत, इकटक मग जोवत, तब इतनौ नहिं झूखीं ।
अब यह जोग सँदेसौ सुनि-सुनि, अति अकुलानी दूखीं ।
बारक वह मुख आनि दिखावहु, दुहि पय पिवत पतुखीं ।
सूर सु कत हठि नाव चलावत, ये सरिता हैं सूखीं ।।२०।।

(सूरसागर से)

१. सूरदास की भक्ति-भावना के विभिन्न सोपानों का निरूपण कीजिए।
२. कृष्ण के बाल-स्वभाव और शरीर-सौन्दर्य की जिन विशेषताओं का वर्णन सूर ने किया है, उन्हें उद्धरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।
३. कृष्ण-प्रेम में तल्लीन गोपिकाओं के जो शब्द-चित्र सूर ने खींचे हैं, उनका वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
४. सूर ने राधा और कृष्ण का प्रथम साक्षात्कार कहाँ और कैसे कराया है ?
५. कृष्ण और बलदेव के अक्रूर के साथ मथुरा जाने के अवसर पर माता यशोदा की भाव विह्वल स्थिति का वर्णन संक्षेप में कीजिए।
६. भ्रमर गीत से क्या तात्पर्य है ? उक्त शीर्षक के अन्तर्गत दिए हुए पदों का सार समझाते हुए लिखिए।
७. भावव्यंजना की दृष्टि से सूर के काव्य की उत्कृष्टता की विवेचना कीजिए।
८. "सूरदासजी की रचनाओं में उच्च कोटि का कलात्मक सौष्ठव दृष्टिगत होता है।" समुचित उदाहरणों के साथ समझाइए।
९. निम्नांकित पदों की व्याख्या कीजिए—
   (क) मेरो मन अनत······छेरी कौन दुहावै।
   (ख) मुरली हरि को·····सीस डुलावत।
   (ग) ऊधौ जोग·····घट तैं परछाहीं।

गोस्वामी तुलसीदास

भारतीय संस्कृति के उन्नायक महाकवि तुलसीदास का अब तक कोई प्रामाणिक जीवनचरित नहीं प्रस्तुत हो सका है। इनका जन्म संवत् १५८९ में हुआ माना जाता है। तुलसी के जन्मस्थान के विषय में भी निम्नलिखित तीन मत प्रचलित हैं—

(१) उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले का राजापुर ग्राम।
(२) एटा का सोरों नामक स्थान।
(३) गोंडा जिले का वाराह क्षेत्र।

सर्वाधिक मान्यता राजापुर ग्राम के पक्ष में है। ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न तुलसीदास अपने शैशव में ही अपने माता-पिता के संरक्षण से वंचित हो गये थे। कवितावली के "मातु पिता जग जाइ तज्यों विधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई" अथवा "बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन, चाहत हो चारि फल चारि ही चनक को" आदि अन्त:साक्ष्य यह स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि तुलसीदासजी का बचपन अनेकानेक आपदाओं के बीच व्यतीत हुआ था। ऐसे अनाथ बालक तुलसी को सौभाग्य से स्वामी नरहरिदास जैसे गुरु का वरद हस्त प्राप्त हो गया। इन्हीं की कृपा से तुलसीदास को वेद, पुराण और अन्य शास्त्रों के अध्ययन और अनुशीलन का अवसर मिला। कुछ समय के पश्चात तुलसीदास स्वामीजी के साथ काशी आ गये, जहाँ स्वामीजी ने इन्हें वेद-वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि में निष्णात बना दिया।

संवत् १६८० में काशी में इनकी पार्थिव लीला का संवरण हुआ। इनकी मृत्यु के संबंध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

परन्तु अधिकतर विद्वान श्रावण शुक्ला सप्तमी के स्थान पर श्रावण कृष्णा तीज शनि को प्रामाणिक मानते हैं। तुलसी के इष्टदेव राम थे—"तुलसी चाहत जनम भरि रामचरन अनुराग"। यही इनके जीवन का परम आदर्श था। राम के प्रति इनकी अटूट भक्तिभावना की अभिव्यक्ति ही इनके सम्पूर्ण काव्य ग्रंथों का विषय है। तुलसी द्वारा रचित निम्नांकित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

दोहावली, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनयपत्रिका, हनुमान बाहुक, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली आदि।

रामचरितमानस तुलसीदास का सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य है। भाषा, भाव, उद्देश्य,कथा-वस्तु,चरित्र-चित्रण,संवाद, प्रकृति-वर्णन,सभी दृष्टियों से हिन्दी साहित्य का यह अद्वितीय ग्रंथ है। इसमें तुलसी के भक्त-रूप और कवि-रूप का चरम उत्कर्ष है।

विनयपत्रिका हिन्दी साहित्य का अति सुन्दर गीति काव्यहै।यह भक्त तुलसी के हृदय का प्रत्यक्ष दर्शन है। आत्मग्लानि, भक्त-हृदय का प्रणतिपूर्ण समर्पण, आराध्य के प्रति भक्त का दैन्य,यही विनयपत्रिका के मुख्य विषय हैं। भक्ति के तत्त्वों का बड़ा व्यापक और पूर्ण विवेचन विनयपत्रिका में हुआ है। आलम्बन के महत्त्व से प्रेरित दीनता,ग्लानि, विरक्ति विषयक पद बड़ी स्पष्ट, बोधगम्य शैली में लिखे गये हैं। यह वस्तुतः तुलसीदास के अन्तःकरण का इतिहास है ।

काव्य के उद्देश्य के संबंध में तुलसी का दृष्टिकोण सर्वथा सामाजिक था। इनके मत में वही कीर्ति, कविता और सम्पत्तिउत्तम है जो गंगा के समान सबका हितकरने वाली हो-"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।" सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन का उच्चतम आदर्श जनमानस के समक्ष रखना ही इनका काव्यादर्श था।जीवन के मार्मिक स्थलों की इनको अदभुत पहचान थी। तुलसीदासजी ने राम के शक्ति,शील, सौन्दर्य समन्वित रूप की अवतारणा की है। इनका सम्पूर्ण काव्य समन्वय-वाद की विराट चेष्टा है। ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का राजपथ ही इन्हें अधिक रुचिकर लगा है ।

तुलसीदास ने अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों में रचनाएँ कीं, जैसे दोहावली में दोहा पद्धति,रामचरितमानस में दोहा-चौपाई पद्धति, विनयपत्रिका में गीति पद्धति, कवितावली में कवित्त-सवैया पद्धति को इन्होंने अपनाया।इन सभी शैलियों में इन्हें अद्भुत सफलता मिली है जो इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा काव्यशास्त्र में इनकी गहन अन्तर्दृष्टि की परिचायक है।

तुलसीदास भाषा के प्रकांड पंडित थे। इनके समय काव्यभाषा के रूप में दो भाषाएँ प्रचलित थीं—ब्रज और अवधी। इन दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था और इन दोनों में इन्होंने अपूर्व कौशल के साथ उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तत कीं ।

भरत-महिमा

दो० — चलत पायदें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु ।।१।।

भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू ।।
जो किछु कहब थोर सखि सोई । राम बंधु अस काहे न होई ।।
हम सब सानुज भरतहि देखें । भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें ।।
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं ।।
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ।।
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी । लघु तिय कुल करतूति मलीनी ।।
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा । कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ।।
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ।।

दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंघल बासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु ।।२।।

निज गुन सहित राम गुन गाथा । सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ।।
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ।।
मनहीं मन मागहिं बरु एहू । सीय राम पद पदुम सनेहू ।।
मिलहिं किरात कोल बनबासी । बैखानस बटु जती उदासी ।।
करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही । केहि बन लखनु रामु बैदेही ।।
ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहि देखि जनम फलु लहहीं ।।
जे जन कहहिं कुसल हम देखे । ते प्रिय राम लखन सम लेखे ।।
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी । सुनत राम बनबास कहानी ।।

दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ।।३।।

मंगल सगुन होहिं सब काहू । फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ।।
भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू ।।
करत मनोरथ जस जियँ जाके । जाहिं सनेह सुराँ सब छाके ।।

सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं । बिह्वल बचन पेम बस बोलहिं ॥
रामसखाँ तेहि समय देखावा । सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पय तीरा । सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा । कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेम मगन अस राजसमाजू । जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु ।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु ॥४॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें । गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें । कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें ॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा । जागे सीयँ सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए । नाथ बियोग ताप तन ताए ॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी । देखीं सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन । भए सोचबस सोच बिमोचन ॥
लखन सपन यह नीक न होई । कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने । पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए ।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे ।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर ।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥५॥

× × ×

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥६॥

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी । सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ॥

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन वारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

दो०–सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥७॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेंउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए ॥
सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई ॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥

दो०--मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥८॥

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥
जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नबीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाहँ जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू ॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु ।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु ॥९॥

सेवक बचन सत्य सब जाने । आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी । होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ॥
राम बास बन संपति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू । बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी । सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ । राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥

दो०-जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु ॥१०॥

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना । प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिकगन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहु ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला । सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

दो०-राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु ।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु ॥११॥

तब केवट ऊँचें चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला । पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥
जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा । मंजु बिसाल देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला । अबिरल छाहँ सुखद सब काला ॥

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी । बिरची विधि सँकेलि सुषमा सी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाँई । रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए । कहुँ कहुँ सियँ कहु लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई । सियँ निज पानि सरोज सुहाई ॥

दो०-जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सियं रामु सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥१२॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोऊ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका । मानहुँ पारसु पायउ रँका ॥
रजसिरधरिहियँनयनन्हिलावहिं । रघुबर मिलन सरिससुखपावहिं ॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ॥

दो०-प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ॥१३॥

सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन । सकल सुमंगल सदनु सुहावन ॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा । जनु जोगीं परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूँछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें । तून कसें कर सरु धनु काँधें ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू । सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसनजटिलतनुस्यामा । जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥

दो०-लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु ॥१४॥

सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ।।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ।।
वचन सपेम लखन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जियँ जाने ।।
बंधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा बस जोरा ।।
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन मन की गति भनई ।।
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ।।
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।।
उठे राम सुनि पेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तारा ।।

दो०-बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ।।१५।।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबिकुल अगम करम मन बानी ।।
परम प्रेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ।।
कहहु सुपेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि मति अनुसरई ।।
कबिहि अरथ आखरबलु सांचा । अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ।।
अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को ।।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ।।
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ।।
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ।।

दो०-मिलि सपेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ।।१६।।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ।।
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ।।
सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय पद पदुम परागा ।।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर कर कमल परसि बैठाए ।।
सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं । मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं ।।

सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ।।
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा । प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ।।
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि।।

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग ।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग ।।१७।।

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू । सिय समीप राखे रिपुदवनू ।।
चले सबेग रामु तेहि काला । धीर धरम धुर दीनदयाला ।।
गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दंड प्रनाम करन प्रभु लागें ।।
मुनिवर धाइ लिए उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ।।
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ।।
रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहि सुर बरिसहि फूला ।।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ।।

दो०—जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ ।।१८।।

(रामचरितमानस से)

कवितावली

लंका-दहन

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानों,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस बीर तरवारि सी उघारी है ।।
तुलसी सुरेस चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है" ।।१।।

हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि, अगार पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि हैं ।।
बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी लंक पघिलाइ पाग पागिहै ।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहैं" ।।२।।

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचाने कौन काहि रे ?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात ! तू निबाहि रे।
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप,
बाप ! तू पराहि, पूत पूत, तू पराहि रे" ।
तुलसी बिलोकि लोग ब्याकुल बिहाल कहैं
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ।।३।।

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँबरि पगार प्रति बानर बिलोकिए ।
अध ऊर्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर हैं,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए ।।
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए ? ।
"लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखायो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ।।४।।

गीतावली

जननी निरखति बान-धनुहियाँ ।
बार-बार उर-नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ।
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे,
"उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे ।"
कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया,
बंधु बोलि जेंइय जो भावै, गई निछावरि मैया" ।
कबहुँ समुझि बनगमन राम को, रहि चकि चित्रलिखी सी ।
तुलसिदास, वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी ।।१।।

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं ।
तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ?
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ?
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिखन बाँची ?
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै ।
दीनबंधु कारुन्य-सिंधु बिनु कौन हिए की बूझै ?
तुलसी रामबियोग-विषम-विष-बिकल नारिनर भारी ।
भरत-स्नेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ।।२।।

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर फेरयो बदन विधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता ।।
गिरि कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ।।
तुलसीसुनि प्रभु-बचनभालु कपिसकल बिकलहिय हारे ।
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे ।।३।।

सुनि रन घायल लखन परे हैं ।
स्वामि-काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं ।।
सुवन-सोक संतोष सुमित्रहिं रघुपति-भगति बरे हैं ।
छिन छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं ।।
कपि सों कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं ।
रघुनंदन बिनु बँधु कुअवसर जद्यपि घनु दुसरे हैं ।।
'तात ! जाहु कपि संग' रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं ।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं ।।
अंब-अनुज-गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं ।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ।।४।।

हृदय-घाउ मेरे, पीर रघुबीरै ।
पाइ सँजीवनि जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै ।।
मोहिं कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै ।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ, केवल कांति मोल हीरै ।।
तुलसी सुनि सौमित्रि-वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ।
उपमा राम-लखन की प्रीति की क्यौं दीजै खीरै-नीरै ।।५।।

दोहावली

हरो चरहिं,तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ।।१।।

मान राखिबो, माँगिबो, पियसों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु ।।२।।

नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहिं को बारिद बिन देइ ।।३।।

चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल ।
छीर-नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल ॥
आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोई ॥५॥
ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ कुजोग सुजोग ।
होइ कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥६॥
जो सुनि समुझि अनीतिरत, जागत रहै जु सोइ ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥७॥
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा-सुभाग तें भूप भानु सो होइ ॥८॥
मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज, धरम, तन तीन कर होइ बेगिही नास ॥९॥
तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन ।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ?१०॥

विनय पत्रिका

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपाल-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो ॥
जथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुषवचन अतिदुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भक्ति लहौंगो ।

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की ।।
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ।।
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की ।।
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौं गति मन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ।।

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ?
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।।
अर्थ अबिद्यामान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं ।।
सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करहिं, जागे बिनु पीर न जाई ।।
स्नुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति बिपति सकै को टारी ?।।
बहु उपाय संसार-तरन कहँ बिमल गिरा स्नुति गावै।
तुलसिदास 'मैं-मोर' गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै ।।३।।

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं ।।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ।।
परबस जानि हँस्यों इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद-कमल बसैहौं ।।

प्रश्न-अभ्यास

१. 'भायप-भक्ति' क्या होती है ? इसकी विशेषताओं के आधार पर भरत का चरित्र-चित्रण कीजिए ।
२. "संत तुलसीदास जी की रचनाओं में लोक-मंगल का स्वर मुखरित हुआ है ।" इस कथन की विशद व्याख्या कीजिए ।
३. दोहावली के संकलित दोहों से नीति सम्बन्धी जो शिक्षा मिलती है, उस पर प्रकाश डालिए ।
४. विनय-पदों के आधार पर भक्त के समर्पण-भाव का निरूपण कीजिए ।
५. "लंकादहन तुलसीदास की वर्णनात्मक और चित्रात्मक शैली का सुन्दर उदाहरण है ।" संकलित अंश के आधार पर इसका विवेचन कीजिए ।
६. तुलसीदासजी की काव्यगत विशेषताओं पर एक निबंध लिखिए ।
७. तुलसीदास की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए ।
८. निम्नांकित स्थलों की व्याख्या कीजिए—
   (क) भरतहिं होइ न राज मदु..............छीर सिंधु बिनसाइ ।
   (ख) प्रेम अमिय..............रघुबीर ।
   (ग) मिलनि प्रीति...........गाँडर ताँती ।
   (घ) अब लौं नसानी...........पद कमल बसैहौं ।

केशवदास

हिन्दी काव्य-जगत में रीतिवादी साहित्य के प्रारंभकर्ता,प्रचारक और महाकवि केशवदास का जन्म मध्यभारत के ओरछा राज्य में संवत् १६१२ वि० में हुआ था। इनके पिता का नाम काशीनाथ मिश्र था। केशव राजाश्रय प्राप्त दरबारी कवि थे। ये ओरछा के राजा मधुकर शाह द्वारा विशेष सम्मानित थे। महाराज के अनुज इन्द्रजीत सिंह केशव को अपना गुरु मानते थे। संस्कृत भाषा और साहित्य पर अधिकार केशव के वंश की विशेषता थी। लगभग संवत् १६७४ में इनका स्वर्गवास हुआ था।

महाकवि केशवदास का समय भक्ति तथा रीतिकाल का संधियुग था। तुलसी तथा सूर ने भक्ति की जिस पावनधारा को प्रभावित किया था, वह तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितिवश क्रमशः ह्रासोन्मुख और क्षीण हो रही थी। दूसरी ओर जयदेव तथा विद्यापति ने जिस श्रृंगारिक कविता की नींव डाली थी, उसके अभ्युदय का आरंभ हो चुका था। वास्तुकला तथा ललित कलाओं का उत्कर्ष इस युग की ऐतिहासिक उपलब्धि थी। अब कविता भक्ति या मुक्ति का विषय न होकर वृत्ति का स्थान ले चुकी थी। भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को प्रधानता मिल रही थी। महाकवि केशव इस काल के न केवल प्रतिनिधि कवि हैं अपितु युग प्रवर्तक भी हैं।

केशवदास लगभग १६ ग्रंथों के रचयिता माने जाते हैं। उनमें से आठ ग्रंथ असंदिग्ध एवं प्रामाणिक हैं। इन आठ प्रामाणिक ग्रंथों में से 'रामचन्द्रिका' रामचरित भक्ति संबंधी ग्रंथ हैं जिसमें केशव ने राम और सीता को अपना इष्टदेव माना है और रामनाम की महिमा का गुणगान किया है। यह ग्रंथ अहम्मन्य पंडितों के पाण्डित्व को परखने की कसौटी है। छंद-विधान की दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। संस्कृत के अनेक छन्दों को भाषा में ढालने में केशव को अपूर्व सफलता मिली है। 'विज्ञान गीता' में केशव ने ज्ञान की महिमा गाते हुए जीव को माया से छुटकारा पाकर ब्रह्म से मिलन का उपाय बतलाया है। ये दोनों ग्रंथ धार्मिक प्रबंध काव्य हैं। इनके 'वीरसिंह देवचरित' 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' और 'रतन बावनी' ये तीनों ही ग्रंथ चारणकाल की स्मृति दिलाते हैं। ये ग्रंथ ऐतिहासिक प्रबंध काव्य की कोटि में आते हैं। काव्यशास्त्र संबंधी ग्रन्थ 'रसिक प्रिया' में रस विवेचन तथा नायिका भेद, 'कवि प्रिया' में कवि-कर्त्तव्य तथा अलंकार और 'नख-शिख' में नख-शिख वर्णन किया गया है। इनके द्वारा कवि ने रीति-साहित्य का शिलान्यास किया है।

श्रेष्ठ कवि की भावुकता की कसौटी वस्तु वर्णन मर्मस्थलों की पहचान है। इस दृष्टि से 'रामचंद्रिका' को परखने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश स्थलों पर मार्मिकता के साथ अनुरक्त होने वाली सहृदयता कवि केशव में न थी। कदाचित् इसीलिए बहुधा लोग इन्हें हृदयहीन कवि कह डालते हैं। परन्तु यह आरोप आँशिक रूप से सत्य है। वास्तविकता यह है कि महाकविकेशव के काव्य में युगानुरूप कलापक्ष ही उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है, तथापि इनमें भिन्न-भिन्न मानव मनोभावों को परखने की पूर्ण क्षमता थी। प्रेम, हर्ष, शोक, लज्जा और उत्साह आदि मनोभावों का बड़ा सुन्दर आयोजन इनके काव्य में हुआ है।

केशवदास का ज्ञान और अनुभव बहुत विस्तृत था। भूगोल, वनस्पति-विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत शास्त्र, राजनीति, समाज नीति, धर्मनीति, वेदान्त आदि विषयों का इन्हें यथेष्ट ज्ञान था और इन्होंने इन विषयों से संबंध रखने वाले तथ्यों का अपने विभिन्न ग्रंथों में अनेक स्थलों में उपयोग किया है।

केशव के समय में दो काव्य-भाषाएँ थीं, अवधी और व्रज। इन्होंने व्रजभाषा को ही अपनी काव्य भाषा के रूप में अपनाया। केशव बुन्देलखंड के निवासी थे। बुन्देलखण्डी भाषा और व्रज-भाषा में बहुत कुछ साम्य है। अतः इनकी भाषा को बुन्देलखण्डी मिश्रित व्रजभाषा कहना अधिक उपयुक्त होगा।

काव्य में अलंकारों के महत्व पर तो केशव का मत ही है—

जद्यपि सुजाति सुलक्षणी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त ॥

—कविप्रिया।

समग्र में वस्तु-निरूपण, शब्द-योजना, अलंकार-योजना एवं छन्दविधान कवि केशव के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। वास्तव में साहित्य शास्त्र को व्यवस्थित रूप देकर उसके लिए स्वतंत्र मार्ग खोलने का श्रेय आचार्य केशव को ही है।

स्वयंवर कथा

खंडपरस को सोभिजै, सभामध्य को दंड ।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार वरिवंड ॥१॥

[सवैया]

सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई ।
ईश मनौ बसुधा में सुधारि सुधाधरमंडल मंडि जोन्हाई ।
तामहुँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई ।
देवन स्यों जनु देवसभा सुभ सीयस्वयंवर देखन आई ॥२॥

[घनाक्षरी]

पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं ।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे वेदन बताए हैं ।
अजर अलर अज अंगी औ अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कौन गुण पाए हैं ।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिबे कों,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥३॥

[सवैया]

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे ब्रत भंग भयो, सो कहौ, अब केशव, को धनु ताने ?
शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने ॥४॥

विश्वामित्र और जनक की भेंट

[दोधक छंद]

आइ गये ऋषि राजहिं लीने। मुख्य सतानँद विप्र प्रवीने।
देखि दुवौ भये पाँयनि लीने। आशिष शीरषवासु लै दीने ॥५॥

[सवैया]

विश्वामित्र

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरतिबेलि वयी है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लयी है।
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिंहु लोक में सिद्धि भयी है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगमयी है ॥६॥

जनक—[सो०] जिन अपनों तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि मैं।
कीन्हों उत्तमवर्ण, तेई विश्वामित्र थे ॥७॥

[मोहन छंद]

लक्ष्मण—जन राजवंत। जग योगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत ॥८॥

[विजय छंद]

श्रीराम—

सब छत्रिन आदि दै काहु छुई न छुए बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निशि बासर केशव लोकन को तमतेज भगै।
भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहूँ थलहूँ परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै ॥९॥

[तारक छंद]

जनक—यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिए ऋषिराई।
सब गाँऊँ छ सातक की ठकुराई ॥१०॥

[विजय छंद]

विश्वामित्र—

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालै न सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुवि पालि न जाई।
भूपति की तुमहीं धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूषन को भुवि भूषण भू तन तै तनया उपजाई।

[दोधक छंद]

जनक— ये सुत कौन के सोभहिं साजे ?
सुंदर श्यामल गौर विराजे।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ।
कै कमला विमला पति कोऊ ॥१२॥

[घनाक्षरी]

विश्वामित्र—दानिन के शील, पर दान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिए सुभाय के।
दीप दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय साधु मन वच काय के।
देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥१३॥

[तारक छंद]

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।

जनक— ऋषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊ।
गहि ल्यावहि हौं जनयूथ बुलाऊँ ।।१४।।

[दंडक छंद]

वज्र तें कठोर है, कैलास ते विशाल, काल-
दंड तें कराल, सब काल काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोक हारे देव सब,
छोड़ चंद्रचूड़ एक और को चढ़ावई ?
पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि-पर्वत-प्रभा न मान पावई।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि,
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ।।१५।।

[तोमर]

विश्वामित्र—सुनि रामचंद्र कुमार। धनु आनिए यहि बार ।।
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोक लोक बढ़ाव ।।१६।।

(दो०) ऋषिहिं देखि हरष्यो हियो, राम देखि कुम्हलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाइ ।।१७।।

[स्वागता छंद]

रामचंद्र कटिसों पटु बाँध्यो। लीलयैव हर को धनु साँध्यो ।।
नेकु ताहि करपल्लव सों छ्वै। फूलमूल जिमि टूक करयो द्वै ।।१८।।

[सवैया]

उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो।
ऐंचो जहीं तबहीं कियो संयुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमारि निहारि सनेह सों शंभु को साँचो शरासन कीनों ॥१६॥

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंड कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल,
पालि ऋषिराज के बचन परचंड को।
सोधु दै ईश को, बोधु जगदीश को,
क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड को।
वाधि वर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग, धनु-
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड कों ॥२०॥

(रामचन्द्रिका से)

प्रश्न-अभ्यास

१. "आचार्यकेशवदास को हृदयहीन कवि कहा गया है।" अपनी पढ़ी हुई रचनाओं के आधार पर पक्ष या विपक्ष में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

२. "आचार्य केशवदास को विभिन्न रसों के वर्णन में कहाँ तक सफलता मिली है।" समुचित उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिए।

३. "केशव की रचनाओं में उच्च कोटि का कलात्मक सौष्ठव दृष्टिगत होता है।" उदाहरणों के साथ समझाइए।

४. "केशव ने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।" सोदाहरण इस कथन की पुष्टि कीजिए।

५. काव्य-सौष्ठव पर प्रकाश डालते हुए व्याख्या कीजिए—
   (क) सातहु दीपन के अवनीपति.........तरुपुण्य पुराने ।
   (ख) केशव ये मिथलाधिप हैं............शुभ योगमयी हैं ।
   (ग) सब छत्रिन आदि.................अद्‌भुत ज्योति जगै ।
   (घ) दानिन के शील.....................दशरथ राय के ।
   (ङ) उत्तम गाथ सनाथ..................साँचो शरासन कीनों ।
६. निम्नांकित अंशों में प्रयुक्त अलंकारों को स्पष्ट कीजिए—
   (य) खंडपरस.........वरिबंड ।
   (र) सोभित मंचन की अवली.........देखन आई ।
   (ल) सब छत्रिन आदि...............अद्‌भुत ज्योति जगै ।
   (व) दानिन के शील...............दशरथ राय के ।
   (श) प्रथम टंकोर...............ब्रह्मंड को ।
७. छंदों के नाम और लक्षण बताइए—
   (क) सातहु दीपन के.........तरुपुण्य पुराने ।
   (ख) दानिन के............दशरथ राय के ।
८. "ऐंचो जहीं......तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनों" के चित्रात्मक सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए ।
९. 'प्रथम टंकोर....... ब्रह्मंड को' छंद में वर्णित धनुभंग के शब्द ने एक साथ कौन-कौन से कार्य किये ?

कविवर बिहारी

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में महाकवि बिहारी की गणना बड़े सम्मान के साथ की जाती है। श्रृंगार रस के वर्णन में ये निस्संदेह अद्वितीय कवि हैं। इनका जन्म संवत् १६६० के लगभग वसुआ गोविन्दपुर ग्राम में हुआ था, जो अब अलवर जनपद के अन्तर्गत है और जहाँ अब भी इनके वंशज निवास करते हैं। बिहारी महाराजा जयपुर नरेश के दरबारी कवि थे। इनकी मृत्यु संवत् १७२० में हुई थी।

बिहारी ने सात सौ से कुछ अधिक दोहों की रचना की, जिनका संग्रह 'बिहारी सतसई' के नाम से हुआ है। एक-एक दोहे में अनेक भावों को सफलतापूर्वक भर देना इन्हीं का काम था। इसीलिए कहा जाता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है। अलंकार, नायिका-भेद, प्रकृति-वर्णन तथा भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि सब कुछ अड़तालीस मात्राओं के एक छोटे से छन्द दोहे में भर कर इन्होंने काव्य-कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किया है।

कहा जाता है कि जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह अपनी नवपरिणीता नवोढ़ा रानी के प्रेम-पाश में आबद्ध हो गये। इस कारण दरबार में अनेक दिनों तक न आने पर बिहारी की एक श्रृंगारिक अन्योक्ति ने महाराजा को सचेत कर पुनः कर्तव्यपथ पर अग्रसर कर दिया। वह दोहा निम्नलिखित है—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥

महाराज इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण-मुद्रा भेंट करते थे। ७१९ दोहों की सतसई सं० १७१९ में समाप्त हुई। इनके दोहों के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है—

सतसैया के दोहरा ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर ॥

यद्यपि बिहारी सतसई श्रृंगार प्रधान ग्रंथ है, पर जीवन के और प्रमुख विषयों पर श्री बिहारी ने अपना अनुभव बड़े चमत्कारिक ढंग से प्रदर्शित किया है। इन्होंने नीति, भक्ति, ज्योषित, गणित, आयुर्वेद, इतिहास आदि संबंधी बड़ी अनूठी उक्तियाँ लिखी हैं, जिनसे इनकी सर्वतोमुखी काव्य-प्रतिभा पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। हिन्दी-जगत में इनकी सतसई का सम्मान बहुत हुआ। बड़े-बड़े महाकवियों ने इस पर टीका लिखने में गर्व समझा।

कविवर बिहारी अपनी शृंगारिक रचनाओं के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्होंने शृंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही पक्षों का सफल चित्रण किया है। संयोग शृंगार-वर्णन में बिहारी के प्रेमी और प्रेमिका में परस्पर इतनी निकटता है जिसके कारण वे अपने अद्वैत भाव को भूलकर एकरूप हो जाते हैं। मिलन के प्रकरणों में मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ बिहारी ने सांकेतिक दृश्यों का भी अनुपम मिश्रण किया है। कवि की दृष्टि नायिका के वाह्य रूप-सौंदर्य के वर्णन, नख-शिख विवेचन में जितनी रमी है उतनी आन्तरिक रमणीयता के प्रकाशन में नहीं। इनके काव्य में जहाँ पारम्परिक शृंगार का वर्णन है वहाँ मौलिक उद्भावनाएँ भी प्राप्त होती हैं। आलम्बन के विशद वर्णन के साथ उद्दीपन के चित्र भी हैं।

बिहारी ने वियोग शृंगार के वर्णन में उतनी ही लफलता प्राप्त की है जितनी कि संयोग शृंगार के वर्णन में। पूर्वानुराग से लेकर करुणात्मक विप्रलम्भ तक का जो अत्यन्त सूक्ष्म निरूपण बिहारी ने अपने दोहों में किया है, वह हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है। भावाभिव्यक्ति की संक्षिप्तता उनकी बहुत बड़ी विशेषता है। बिहारी का प्रकृति वर्णन भी बड़ा सुन्दर है, परन्तु उद्दीपन रूप में ही चित्रित किया गया है।

सतसई की भाषा बड़ी ही प्रौढ़, प्रांजल, परिष्कृत और परिमार्जित ब्रज-भाषा हैं। परन्तु इसमें उस समय के प्रचलित अरवी-फारसी के शब्दों का भी बिहारी ने प्रयोग किया है। उक्ति-वैचित्र्य तथा शब्द-चित्रों की दृष्टि से इनकी सतसई सचमुच बेजोड़ है।

१

भक्ति एवं श्रृंगार

करौ कुबत जगु कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हियै बसत, त्रिभंगी लाल ॥१॥

अजौं तर्यौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसर लह्यौ बसि मुकतनु कैं संग ॥२॥

मकराकृति गोपाल कैं, सोहत कुंडल कान।
धर्यो मनौ हिय धर समरु ड्योढ़ी लसत निसान ॥३॥

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ ॥४॥

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु हीं सौं बात ॥५॥

कर लै, चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ॥६॥

अंग-अंग-नग जगमगत दीप सिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह ॥७॥

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जल चादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥८॥

कंज-नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच-अँगुरी-बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार ॥९॥

औंधाई सीसी, सु लखि बिरह-बरनि विललात।
बिच हीं सूखि गुलाबु गौ, छीटौ छुई न गात ॥१०॥

करी बिरह ऐसी, तऊ गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु ॥११॥

पिय कैं ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु हीं आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥१२॥

जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता काननु सेवत नैन ॥१३॥

मूड़ चढ़ाऐंऊ रहै परयौ पीठि कुच-भरु।
रहै गरैं परि, राखिबौ तऊ हियैं पर हारु ॥१४॥

रहौ, गुही बेनी, लखे गुहिबे के त्यौनार।
लागे नीर चुचान, जे नीठि सुखाए वार ॥१५॥

कर-मुँदरी की आरसी प्रतिबिंबित प्यौ पाइ।
पीठ दियैं निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ ॥१६॥

खेलन सिखए, अलि, भलैं चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार ॥१७॥

लल्न, सलोने अरु रहे अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुँह लागि ॥१८॥

अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान ॥१९॥

क्यों बसियै, क्यों निबहियै, नीति नेह-पुर नाँहि।
लगालगी लोइन करैं, नाहक मन बँधि जाँहि ॥२०॥

दृग-उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं, दई, नई यह रीति ॥२१॥

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु ॥२२॥

सुनत पथिक-मुँह, माह-निसि चलति लुवैं उहिं गाम।
बिनु बूझैं, बिनु ही कहैं, जियति बिचारी बाम ॥२३॥

हौं ही बौरी बिरह-बस कै बौरौ सबु गाउँ।
कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सीतकर नाउँ ॥२४॥
कागद पर लिखत न वनत, कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सब तेरौ हियौ मेरे हिय की बात ॥२५॥

[सोरठा]

मैं लखि नारी-ज्ञानु करि राख्यौ निरधारु यह।
वहै रोग-निदानु वहै बैदु, औषधि वहै ॥२६॥

(बिहारी-रत्नाकर से)

प्रश्न-अभ्यास

१. "क्या विहारी को रीति काल का प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है?" सतर्क उत्तर दीजिए।
२. संकलित दोहों के आधार पर विहारी के उक्ति-वैचित्र्य को सोदाहरण स्पष्टकीजिए।
३. सिद्ध कीजिए कि दोहे जैसे छोटे छन्द में कवि ने समस्त रस-सामग्री का समावेश कर "गागर में सागर" भर दिया है।
४. "मुक्तक काव्य की सभी विशेषताएँ बिहारी के दोहों में प्राप्त हैं।" उदाहरण देकर समझाइए।
५. विहारी के स्वपठित दोहों के आधार पर उनकी भक्ति-भावना का निरूपण कीजिए।
६. "विहारी ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों के वड़े सरस वर्णन प्रस्तुत किये हैं।" समुचित उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिए।
७. विहारी ने सामान्य मनुष्य के लिए किन नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की है, उद्धरण देते हुए समझाइए।
८. "दिया वढ़ाएँ हूँ रहै वड़ौ उज्यारौ गेह" में कौन-सा अलंकार है और क्यों?
९. निम्नांकित की व्याख्या कीजिए—

(क) करौ कुबत..........त्रिभंगी लाल।
(ख) कहत नटत..........नैननु ही सौं वात।
(ग) मूड़ चढ़ाऐऊ..........हियैं पर हारु।
(घ) मैं लखि नारी..........औषधि वहै।

महाकवि भूषण

कविवर भूषण का जन्म कानपुर ज़िले के तिकवाँपुर ग्राम में सन् १६१३ ई० में हुआ था। इनके पिता पंडित रत्नाकर त्रिपाठी दुर्गा के अनन्य भक्त थे। हिन्दी के प्रसिद्ध रससिद्ध कवि चिन्तामणि और मतिरामजी उन्हीं के पुत्र थे। भूषण इनकी कवि उपाधि थी जो इन्हें चित्रकूट के सोलंकी महाराजा रुद्र से प्राप्त हुई थी। इनके असली नाम का पता नहीं चला है। इनकी ज़ीवन-लीला का अवसान सन १७१५ ई० के लगभग माना जाता है। भूषण मध्य युग के वीररस के श्रेष्ठ कवि हैं। विलासिता और परतंत्रता के युग में स्वतन्त्रता, ओजस्विता, तेजस्विता एवं राष्ट्रीयता का स्वर हम भूषण के मुख से ही सर्वप्रथम सुनते हैं। भूषण ने अपने समकालीन कवियों की तरह विलासी, आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए श्रृंगारी काव्य की रचना न करके अपनी वीरोपासक मनोवृत्ति के अनुकूल अन्याय और संघर्ष के दमन में तत्पर, ऐतिहासिक महापुरुष शिवाजी एवं छत्रसाल जैसे वीर नायकों का अपनी ओजस्वी कविता द्वारा लोमहर्षक गुणगान किया। यद्यपि ये अपने युग की लक्षण-ग्रंथ-परम्परा से तथा युग की प्रवृत्तियों से सर्वथा मुक्त नहीं थे, तथापि जातीय, राष्ट्रीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता रही है। सच तो यह है कि भूषण हिन्दी साहित्य के प्रथम राष्ट्रीय कवि हैं। भारतमाता के अमरपुत्र छत्रपति शिवाजी एवं महाराज छत्रसाल बुंदेला जैसे लोकोपकारी महापुरुषों के चरितगायन में ही इन्होंने अपने जीवन को सार्थक समझा। इन्हीं महापुरुषों की दानशीलता, युद्ध-वीरता, दयालुता एवं धर्मपरायणता का महाकवि भूषण द्वारा उदात्त चित्रण किया गया है। इन्हीं चरितनायकों के शौर्य-वर्णन या वीर रसात्मक उद्‌गार सारी भारतीय जनता की सम्पत्ति है। इन्होंने स्वयं कहा है—"सिवा को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।"

भूषण वीर रस की रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। वीर रस के सहकारी रौद्र और भयानक हैं। अपने प्रियरस के निरूपण में भूषण ने त्रास या भय के अनेक रूपों की व्यंजना अनेक प्रकार की रसात्मक स्थितियों की कल्पना के साथ की है। इनमें नवीन उद्‌भावना की क्षमता अच्छी थी। विपक्ष की दीनता, व्याकुलता और खीझ आदि की सहायता से शिवाजी के आंतक की व्यंजना में नूतनोद्‌भावना के अनेक प्रयोग भूषण की रचना में हैं। वीभत्स की व्यंजना में पारस्परिक वर्णन है। युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप भूषण ने श्रृंगार रस का भी वर्णन किया है पर इसमें भी इन्होंने नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं। एक उदाहरण देखें—**'कारो घन घेरि-घेरि मार्‌यो अब चाहत है, एते पर करति भरोसो कारे काग कों'।**

भूषण की रचना दृश्य-चित्रण में भी श्रेष्ठ है, यद्यपि इसके लिए मुक्तक में स
कम ही होता है । वीर रस की कृति में युद्धस्थल का चित्रण आ सकता है पर युद्ध
में अनेक दृश्यों के त्वरित गति से संघटित होने के कारण चित्रण की विशेष विधि
काम में आ सकती है । अनेक दृश्यों का सुगुंफित चित्रण मुक्तक में प्राय: नहीं आ पा
फिर भी भूषण ने 'ताव दै-दै मूंछन कंगूरन पै पाँव दै-दं, घाव दै-दै अरिमुख कूदि
कोट में,' जैसे चित्रणों में सफलता प्राप्त की है। युद्धस्थल-वर्णन की अपेक्षा युद्ध
प्रस्थान-वर्णन ही भूषण की रचना में अधिक है ।

भूषण विरचित तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं । शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्र
दशक । भूषण को हिन्दी साहित्य का प्रथम राष्ट्रीय कवि माना जाता है परन्तु भूषण
राष्ट्रीयता की परीक्षा देश की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही
चाहिए । भूषण के समय में हिन्दुत्व का संदेश ही भारतीयता और ज्वलंत राष्ट्रीयता
संदेश था ।

यह बहुत ही भ्रान्त धारणा है कि ये मुसलिम सम्प्रदाय के विरोधी थे । इ
केवल औरंगजेबी साम्राज्यवाद और उसके अमानवीय कृत्यों के प्रति अपना आक्रोश
किया है । उदार हृदय मुसलमान तो इनकी प्रशंसा के विषय थे—

"दौलत दिल्ली की पाय कहाये आलमगीर ।
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं ।।"

यद्यपि भूषण की कविता व्रजभाषा में है परन्तु इसमें व्रजभाषा के माधुर्य की
ओज की प्रधानता है । इनकी भाषा में स्थानीय पुट भी अनायास आ गया है । इ
अरबी-फारसी के शब्दों का भी नि:संकोच प्रयोग किया है ।

शिवा-शौर्य

साजि चतुरंग सैन अंग मैं उमंग धारि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद ब्रिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।
ऐलफैल खैलभैल खलक में गैलगैल,
गज्जन की ठैलपैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरिधारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥१॥

बाने फहराने घहराने घंटा, गजन के,
नाहीं ठहराने रावराने देसदेस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने, सिवराजजू नरेस के।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥२॥

छूटत कमान बान बंदूकरु कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट में।
ताही समैं सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वेषिन पै बीरन लै जोट में।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूंछन कंगुरन पै पाँव दै दै,
घाव दै दै अरि मुख कूदि परें कोट में ॥३॥

इन्द्र निज हेरत फिरत गजइन्द्र अरु,
इंद्र को अनुज हेरै दुगधनदीस कों।
भूषन भनत सुरसरिता को हंस हेरैं,
बिधि हेरैं हंस को चकोर रजनीस कों।
साहितनै सरजा यौं करनी करी है तैं वै,
होतु हैं अंचभो देव कोटियो तैंतीस कों।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज,
गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस कां ॥४॥

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरि हूँ,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जोरि आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है ॥५॥

छत्रसाल-प्रशस्ति

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभानु कैसी,
फारैं तमतोम से गयंदन के जाल कों।
लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिन सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन के माल कों।

लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल कों।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल कों।

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी-सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,
भूषन सकै करि बखान को वलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।।

(भूषण ग्रन्थावली से)

प्रश्न-अभ्यास

१. महाकवि भूषण ने किन राजाओं के शौर्य का वर्णन किया है? उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२. शिवाजी के युद्ध अभियान का वर्णन अपने शब्दों में लिखिए।
३. छत्रसाल की बरछी की क्या विशेषताएँ हैं? शिवाजी की तलवार से उसकी तुलना कीजिए।
४. कविवर भूषण अपनी किन विशेषताओं के आधार पर अपने युग के कवियों से पूर्णतः पृथक हो जाते हैं?
५. भूषण की रचनाओं में अपने युग की प्रवत्तियाँ कहाँ तक दृष्टिगत होती हैं? उदाहरण देकर समझाइए।
६. भूषण के काव्य के कलात्मक सौष्ठव की समुचित उदाहरणों के साथ विवेचना कीजिए।

७. वीर रस का स्थायी भाव क्या है ? संकलित पदों में इसकी अभिव्यक्ति कि
प्रकार हुई है, स्पष्ट कीजिए।

८. निम्नांकित पंक्तियों में कौन-सा अलंकार है और क्यों ?

(१) तारा सो तरनि घूरिधारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।

(२) प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल कों।

(३) पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।

९. व्याख्या कीजिए—

(क) साजि चतुरंग.........हलत है।

(ख) इन्द्र निज हेंरत.........गिरीस कों।

(ग) भुज भुजगेस.........खलन के।

———

विविधा

संग्रह में अनेक प्रतिष्ठित कवियों को स्थान देने पर भी मध्य कालीन काव्य का सम्यक परिचय एवं पर्याप्त रसास्वाद कुछ कवियों की कविताओं के अभाव में अधूरा-सा लगा। पर ऐसे सभी महान कवियों को स्थान देना सम्भव नहीं था। अतः कुछ कवियों का चुनाव उनकी काव्य-प्रतिभा की गरिमा के आधार पर कर लिया गया। ये सभी कवि भक्त और श्रृंगारी हैं। इनके काव्य का रसास्वाद करने के लिए इनकी काव्य की प्रमुख विशेषताओं से अवगत कराना आवश्यक एवं उपयोगी है। इसी दृष्टि से विविधा में संगृहीत कवियों की काव्यगत विशेषताओं का विहंगावलोकन किया गया है।

सेनापति

हिन्दी साहित्य में सेनापति की प्रसिद्धि उनके प्रकृति-वर्णन एवं श्लेष के उत्कृष्ट प्रयोग के कारण है। हिन्दी के किसी भी श्रृंगारी अथवा भक्त कवियों में सेनापति जैसा प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण नहीं मिलता। इन्होंने सभी ऋतुओं के बहुत ही विषद एवं सजीव चित्र उपस्थित किये हैं। पर उनमें प्रकृति के आलम्बन रूप की अपेक्षा उनके उद्दीपन रूप की ही प्रधानता है। सेनापति ने प्रकृति को एक शहरी एवं दरबारी व्यक्ति की दृष्टि से देखा है। अतः इन्हें वह भोग और विलास की सामग्री अधिक ही प्रतीत हुई। सेनापति की कविता मर्मस्पर्शी है। उसमें भावुकता एवं चमत्कार का बहुत सुन्दर मिश्रण है। श्लेष के तो वे अनुपम कवि हैं। इसके अतिरिक्त अनुप्रास, यमक आदि का भी इनकी कविता में प्रचुर प्रयोग है। सेनापति की भाषा अत्यन्त मधुर एवं चमत्कारपूर्ण है। इनकी राम भक्ति की कवितायें भी अपूर्व एवं हृदयस्पर्शी हैं।

मतिराम

मतिराम आचार्य और कवि दोनों हैं। 'रस-राज' और 'ललित-ललाम' इनके रस और अलंकार निरूपण के अनुपम ग्रन्थ हैं। उदाहरणों एवं सरसता की रमणीयता के कारण प्रतिपाद्य रस और अलंकार पाठक को अनायास ही हृदयंगम हो जाते हैं। मतिराम की कविता में भावों की सहज रमणीयता एवं मर्मस्पर्शिता के दर्शन होते हैं। उसी के अनुरूप इनकी अभिव्यंजना और भाषा अकृत्रिम है। बिहारी की तरह

इनकी वृत्ति, वस्तु-व्यंजना, व्यापारों और चेष्टाओं के वैचित्र्य में नहीं रमी है। इन्होंने भारतीय जीवन के मर्मस्पर्शी प्रसंगों को ग्रहण करके उनके अनुभूति-व्यजक चित्र प्रस्तुत किये हैं। इसी से स्वाभाविकता और सहजता इनकी भाव-व्यंजना और भाषा की प्रमुख विशेषताएँ वन गयी हैं।

देव

रीतिकाल के अनेक कवियों की तरह देव में आचार्य और कवि का मिश्रण है। देव में कवित्व की नैसर्गिक प्रतिभा है तथा इनका काव्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। पर मूलत: वे गार्हस्थ्य प्रेम के अत्यन्त सरस तथा उत्कृष्ट कवि हैं। इनका सौन्दर्य-चित्रण हृदयस्पर्शी है। कहीं-कहीं भाव की अत्यन्त उच्च कल्पना है, पर अनुप्रास, अक्षर-मैत्री आदि के मोह के कारण उस उच्च भावभमि पर टिक नहीं पाये हैं। पर देव का-सा भाव-सौष्ठव तथा उनकी सी सूक्ष्म कल्पना रीति काल के बहुत कम कवियों में मिलती है। देव का शब्द-भण्डार भी अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। देव की गणना रीतिकाल के प्रमुख उत्कृष्ट एवं मौलिक आचार्यों में की जाती है। इनका 'शब्द रसायन' 'काव्य प्रकाश' पर आधारित ग्रन्थ है। देव रीतिकाल के सबसे अधिक सृजन करने वाले कवि हैं।

घनानंद

शुक्लजी घनानंद को साक्षात् रसमूर्ति कहते हैं।इन्हें रीति-मुक्त धारा का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जा सकता है। अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह इनका काव्य विषय कल्पना प्रसूत नहीं है। इनकी कविताका प्रमुखविषयवियोग शृंगार है और उसकी पीर इन्हें जीवन से प्राप्त हुई है। माना जाता है कि'सुजान'नामक किसी रमणी से इनका प्रेम था और वह इनके प्रेम के अनुरूप प्रतिदान नहीं दे सकी। अत: ये उसे 'विसासी'कहकर पुकारते हैं। 'सुजान'शब्द कृष्ण और प्रेयसी दोनों का बोधक है, अत: इनकी कविता में प्रेम औरभक्ति का मिश्रण है.पर लौकिक प्रेम के स्वर ही अधिक मुखर हैं। इनकी कविता में भी प्रेमकी बाह्य चेष्टाओं का हीअधिक वर्णन है, पर हृदय का स्पर्श करने वालीगहरी अन्तर्वृत्तियों के मर्म स्पर्शीचित्र भी पर्याप्त हैं। इन्होंने विरह की आभ्यन्तर अनुभूति का बहुत ही हृदयद्रावक ग्रहण किया है।

घनानंद का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वे भाषा को वुद्धि से नहीं, हृदय से ग्रहण करते हैं। इन्होंने शब्दों के भावों का हृदय से साक्षात्कार किया है। यही कारण है कि ऊपर से आरोपित बोझिल अलंकारों कीअपेक्षाघनानंद ने भाव की रमणीयता को सम्प्रेषित करने में समर्थ लाक्षणिता एवं ध्वन्यात्मकता का प्रयोग किया है। इनका उक्ति-वैचित्र्यऔर

वचन-वक्रता छायावादी कवियों के टक्कर के हैं। घनानंद की कविता में विशेषण-विपर्यय और विरोधमूलक चमत्कार के बहुत ही सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। घनानन्द की भाषा में वक्रोक्ति के साथ भाषा के स्निग्ध प्रवाह एवं भाव-व्यंजन-क्षमता का भी अपूर्व मिश्रण है।

पद्माकर

बिहारी के बाद पद्माकर रीतिकाल के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं। ये रीतिकार कवि हैं। "जगद्विनोद" और "पद्माभरण" इनके क्रमशः रस और अलंकार निरूपण के ग्रन्थ हैं। मूलतः पद्माकर श्रृंगारी कवि हैं। पर 'हिम्मत बहादुर विरदावली' और 'प्रबोध पचासा' इनके वीर और भक्ति-भावना के ग्रंथ हैं। पर श्रृंगार रस में ही पद्माकर की वास्तविक सृजनात्मक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इनका श्रृंगार सरस एवं सहज अनुभूति से ओतप्रोत है। भाव-कल्पना के आडम्बर में वे उलझे नहीं हैं। अनुभावों और भावों के चित्रण तो अत्यधिक मर्म-स्पर्शी हैं। इनमें बिहारी के वाग्वैदग्ध्य एवं मतिराम की सी भाषा की स्वाभाविक प्रवाहमयता के दर्शन होते हैं। इनकी भाषा मे लाक्षणिकता का भी सुन्दर पुट है। सूक्तियों में तो इनकी समता का रीतिकालीन शायद ही कोई कवि हो।

सेनापति

बृष कौं तरनि, तेज सहसौं किरन करि
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत है।
'सेनापति' नैंक दुपहरी के ढरत होत,
धमका बिषम ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है ॥१॥

सिसिर मैं ससि कौं सरूप पावै सविताऊ,
घामहूँ मैं चाँदिनी की दुति दमकति है।
'सेनापति' होत सीतलता है सहस गुनी,
रजनी की झाँई बासर मैं झमकति है।
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कमोदनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है ॥२॥

मतिराम

निस दिन स्रोननि पियूष सों पियत रहैं,
छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुरग्राम को।
तरनि-तनूजा-तीर बन कुंज बीथिन में,
जहाँ जहाँ देखति हैं रूप छबि धाम को।
कवि 'मतिराम' होत हाँतो न हिये ते नैक
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।
ऊधौ तुम कहत बियोग तजि जोग करो,
जोग तब करें जो बियोग होय स्याम को ॥१॥

कुन्दन को रंगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौन मैं मंजु विलासन की सरसाई।
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहैं मुसकानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों-त्यों खरीनिकरै सी निकाई ।।२।।

देव

डारद्रुम पलना, बिछौना नवपल्लव के,
सुमन झंगुला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी कीर बहरावै, 'देव'
कोकिल हलावै, हुलसावै करतारी दै।।
पूरित पराग सो उतारौ करै राई-लोन,
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीपजू को बालक बसंत, ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ।।१।।

झहरि झहरि झीनी बूँद हैं परति मानों
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मो सौं, चलौ झूलिबे को आज,
फूली न समानी भई ऐसी हौं मगन मैं।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जांनि वा जगन में।
आँख खोलि देखौं तौं न घन हैं, न घनस्याम,
वेई छाई बूँदैं मेरे आँसू ह्वै दृगन में ।।२।।

धार मैं धाई धँसी निरधार ह्वै,
जाइ फँसी उकसीं न उबेरी।
री ! अंगराय गिरीं गहिरी, गहि
फेरे फिरीं औ घिरीं नहिं घेरी।

'देव' कछू अपनो बसु ना, रस—
लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि ही बूड़ि गयीं पंखियाँ,
अँखियाँ मधु की मँखियाँ भईं मेरी ॥३॥

घनानन्द

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहां साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
'घनआनँद' प्यारे सुजान सुनौ यहां एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥१॥

डगमगी डगनि धरनि छबि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुन्दर बदन तैरें कोटिक मदन वारौं,
चितै चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
काल्हि हि गली अली निकसे अचिक आय,
कहा कहौं 'अटक मटक' तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनन्द के घन छाय,
बसी मरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥२॥

पर काजहि देह को धारे फिरौ,
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ,
सबही विधि सज्जनता सरसौ।
'घनआनँद' जीवन दायक हौ,
कछु मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन,
मो अँसुवान को लै बरसौ ॥३॥

पद्माकर

बरसत मेह नेंह सरसत अंग-अंग,
झरसत देह जैसे जरत जवासो है।
कहै 'पद्माकर' कलिंदी के कदबन पै,
मधुपनि कीन्हों आय महत मवासो है।
ऊधौ यह ऊधम जताइ दीजो मोहन को,
ब्रज सो सुबासो भयो अगनि अवा सो है।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो, काहू
बिथित बियोगिनि के प्रानन को प्यासो है ॥१॥

पात बिन कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं।
कहै 'पद्माकर' बिसासी या बसंत के,
सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं।
ऊधो यह सुधो सो संदेसो कहि दीजो भले,
हरि सों हमारो ह्याँ न फूले बन कुंजहैं।
किंसुक, गुलाब, कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं ॥२॥

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त है।
कहै 'पद्माकर परागहू में पौनहू में,
पातन में, पिक में पलासन पगन्त है।
द्वारे में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखौ दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरयो बसन्त है ॥३॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म काशी नगरी में इतिहासप्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में ९ सितम्बर सन् १८५० ई० को हुआ था। इनके पिता बाबू गोपाल चन्द्र (उपनाम गिरधरदास) बड़े अच्छे कवि थे। उन्होंने छोटे-बड़े कुल मिला कर चालीस ग्रंथों की रचना की थी। इनका घराना काशी के धनिक-समाज में सदैव प्रतिष्ठित रहा।

जब ये पाँच वर्ष के थे तभी इनकी माता का निधन हो गया और दस वर्ष की आयु पर इनके पिताजी भी चल बसे। बाबू हरिश्चन्द्र की विमाता ने इन्हें क्वींस कालेज में भर्ती कराया किन्तु पारिवारिक सम्पत्ति की देखभाल तथा गार्हस्थ्य-जीवन की उलझनों ने इन्हें शिक्षा की ओर से विरत कर दिया। भारतेन्दु की प्रतिभा विलक्षण थी। स्कूल छूट जाने पर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की ही इन पर एकसाथ कृपा थी। इनकी मित्रमण्डली में जहाँ इनके समय के सभी लेखक, कवि एवं विद्वान थे, वहाँ बड़े-बड़े राजा-महाराजा रईस और सेठ साहूकार भी थे। हरिश्चन्द्रजी लड़कपन से ही परमोदार थे। इन्हें हिन्दी के प्रति अगाध और अटूट प्रेम था। इन्होंने अपनी विपुल धनराशि को राजसी ठाटबाट, दान, परोपकार, संस्थाओं को मुक्तहस्त से चन्दा तथा हिन्दी के साहित्यकारों की सहायता आदि पर व्यय कर दिया। इनकी साहित्यिक मण्डली में पं० बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' पं० बालकृष्ण भट्ट तथा पं० प्रताप नारायण मिश्र आदि विद्वज्जन सम्मिलित थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अनेक भारतीय भाषाओं में कविता करते थे परन्तु ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था, जिसमें श्रृंगारिक रचना करने में ये सिद्धहस्त थे। केवल प्रेम को लेकर ही इनकी रचनाओं के सात संग्रह प्रकाशित हुए, जिनके नाम—प्रेम फुलवारी, प्रेम प्रलाप, प्रेमाश्रु-वर्णन प्रेममाधुरी, प्रेम-मालिका, प्रेम तरंग तथा प्रेमसरोवर हैं। यह समस्या-पूर्ति का युग था जिसके अभ्यास ने इन्हें आशु कवि बना दिया था। हरिश्चन्द्रजी को यात्राओं का भी शौक था।

देश के सुप्रसिद्ध विद्वज्जनों ने ही इन्हें भारतेन्दु की उपाधि दी थी। भारतेन्दु वास्तव में भारतेन्दु ही थे। इनकी कीर्ति-कौमुदी इनके जीवन काल में ही चतुर्दिक फैल चुकी थी। इन्होंने हिन्दी को तत्कालीन विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान दिलाने का प्रयत्न किया। स्वयं लिखकर तथा अपने मित्रों और आश्रितों से अनुरोधपूर्वक लिखवाकर हिन्दी साहित्य का भंडार भरा। इन्होंने अनेक, नाटक, नाटिकाएँ लिखीं, जिनका सफल अभिनय किया।

भारतेन्दुजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे कवि, लेखक, नाटककार, सम्पादक सभी कुछ एक साथ थे। ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा का कोई अन्य साहित्यकार हिन्दी को फिर न मिल सका। दु:ख है कि अधिक व्यय कर लेने के पश्चात धनाभाव हो जाने पर ये भीतर ही भीतर क्षय रोग से ग्रस्त होते गये और केवल ३४ वर्ष ४ मास की आयु पाकर ६ जनवरी सन् १८८५ को ही भारत का यह चन्द्रमा अस्त हो गया।

भारतेन्दुजी ने हिन्दी गद्य का सूत्रपात किया, साहित्य-क्षेत्र की समस्त पुरानी व नयी विधाओं में रचना करके हिन्दी साहित्य को सर्वांगपूर्ण बनाया। इन्होंने लगभग ७२ छोटे-बड़े ग्रन्थों का प्रणयन करके हिन्दी का प्रचार और प्रसार करते हुए हिन्दी जगत में अपने लिए सदा के लिए स्थाई स्थान बना लिया।

पन्तजी के शब्दों में—

"भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा निर्माण।
किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि स्वर संधान॥"

अपनी विशिष्ट और बहुमुखी सेवाओं के कारण वे हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्तक कहे जाते हैं।

प्रेम-माधुरी

मारग प्रेम को को समुझै 'हरिचन्द' यथारथ होत यथा है।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही होन की सारी कथा है।
जानत है जिय मेरौ भली विधि औरु उपाइ सबै बिरथा है।
बावरे हैं ब्रज के सिगरे मोहिं नाहक पूछत कौन बिथा है ।।१।।

रोकहिं जो तौ अमंगल होय औ प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइए।
जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौ कछू न कहैं तो सनेह नसाइए।
जो 'हरिचन्द' कहैं तुमरे बिनु जीहैं न तो यह क्यों पतिआइए।
तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आपै हमें समझाइए ।।२।।

आजु लौं जौ न मिले तौ कहा हम तो तुमरे सब भाँति कहावैं।
मेरी उराहनो है कछ नाहिं सबै फल आपने भाग को पावैं।
जो 'हरिचन्द' भई सो भई अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा की समै सब कंठ लगावैं ।।३।।

Imp. ब्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन हैं हमहूँ पहचानती हैं।
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा 'हरिचन्द न ज्ञानहिं ठानती हैं।
तुम ऊधो यहै कहियो उनसों हम और कछू नहिं जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं ।।४।।

यह संग मैं लागियै डोलैं सदा,
बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहूँ जो बियोग परै 'हरिचन्द'
तौ चाल प्रलै की सु ठानती हैं।
बरुनी में थिरै न झपैं उझपैं,
पल मैं न समाइबो जानती हैं।

पिय प्यारे, तिहारे निहारे बिना,
अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं ॥५॥

एक बेर नैन भरि देखैं जाहि मोहै तौन,
माच्यौ ब्रज गाँव ठाँव ठाँव मैं कहर है ।
संग लगी डोलैं कोऊ घर ही कराहैं परी,
छूट्यौ खान पान रैन चैन बन घर है ।
'हरिचंद्र' जहाँ सुनो तहाँ चरचा है यही,
इक प्रेम-डोर नाथ्यौ सगरो शहर है ।
या मैं न संदेह कछू दैया ! हौं पुकारि कहौं,
भैया की सौं मैया री, कन्हैया जादूगर है ॥६॥

काले परे कोस चलि-चलि थक गए पाय,
सुख के कसाले परे ताले परे नस के ।
रोय रोय नैनन में हाले परे, जाले परे,
मदन के पाले परे प्रान परबस के ।
'हरीचंद' अंगहूँ हवाले परे रोगन के,
सोगन के भाले परे तन बल खसके ।
पगन में छाले परे नाँघिबै कौ नाले परे,
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ॥७॥

यमुना-छवि

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये ॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा ।
कैं प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
मनु आतप वारन तीर कौ सिमिटि सबै छाये रहत ।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥१॥

तिन पै जेहि छिन चंद जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति ।।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ।।
सो को कवि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इक सी नभ तीर की ।।२।।

परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ।।
मनु हरि दरसन हेतु चन्द्र जल बसत सुहायो ।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ।।
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है ।।३।।

कबहुँ होत सत चंद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ।।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरंग की डोर हिंडोरनि करत कलोलैं ।।
कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ।।४।।

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ।।
कै कालिंदी नीर तरंग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ।।
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ।।५।।

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जल कुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत ।
जल पान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥६॥

(भारतेन्दु ग्रंथावली से)

प्रश्न-अभ्यास

१. 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी काव्य का वैतालिक कहा गया है ।' आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्य-रचनाओं पर भक्त-कवियों का प्रभाव कहाँ तक दृष्टिगत होता है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।
३. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्य-रचनाओं पर रीतिकालीन कवियों के प्रभाव का निरूपण कीजिए ।
४. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्य-रचनाओं में मध्ययुगीन और आधुनिक प्रवृत्तियों का कहाँ तक समन्वय हुआ है—समुचित उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।
५. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचना 'यमुना-छवि' की काव्य-शोभा का निरूपण कीजिए ।
६. सवैया छंद के लक्षण दीजिए और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सवैया छंद की रचनाओं पर उन्हें घटित करते हुए उनके काव्य-सौन्दर्य पर विचार कीजिए ।
७. निम्नलिखित स्थलों का संदर्भ देते हुए तथा काव्य-सौन्दर्य की विवेचना करते हुए व्याख्या लिखिए—
   (क) मारग प्रेम को…………कौन बिथा है ।
   (ख) एक बेर नैन भरि………कन्हैया जादूगर है ।
   (ग) परत चन्द्र प्रतिबिम्ब……लखत है ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

आधुनिक काल के व्रजभाषा के कवियों में रत्नाकर का सर्वोच्च स्थान है। इनका जन्म काशी में सन् १८६६ ई० में एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था। बचपन में उर्दू-फारसी, अंग्रेजी की शिक्षा मिली। बी० ए०, एल-एल० बी० करने के बाद एम० ए० (फारसी) की पढ़ाई माताजी के निधन के कारण पूरी न हो सकी। १९०० ई० में अवागढ़ (एटा) के खजाने के निरीक्षक, १९०२ ई० में अयोध्या नरेश के निजी सचिव तथा १९०६ ई० में उनकी मृत्यु के पश्चात महारानी के निजी सचिव बने। राजदरबार से सम्बद्ध रहने के कारण इनका रहन-सहन सामंती था, लेकिन प्राचीन धर्म, संस्कृति और साहित्य में गहरी आस्था थी। प्राचीन भाषाओं का ज्ञान था तथा विज्ञान की अनेक शाखाओं में इनकी गति थी। भारत के कई प्रसिद्ध तीर्थ एवं प्रमुख स्थानों का इन्होंने भ्रमण किया। विद्यार्थी काल से ही उर्दू-फारसी में कविता लिखते थे लेकिन कालान्तर में व्रजभाषा में रचना करने लगे। 'साहित्य-सुधानिधि' और 'सरस्वती' का सम्पादन, 'रसिक-मंडल' का संचालन तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना एवं विकास में योग दिया। अखिल भारतीय कवि सम्मेलन तथा चौथी ओरियंटल कानफ्रेन्स के हिन्दी विभाग के सभापति बनाये गये। हरद्वार में २१ जून सन् १९३२ को इनका देहान्त हुआ।

आधुनिक चेतना की यथासम्भव उपेक्षा करते हुए मध्ययुगीन मनोवृत्ति में आकंठ मग्न होकर काव्य-साधना में तल्लीन कवियों में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का नाम सर्वप्रथम है। इन्होंने अपनी मध्ययुगीन प्रवृत्ति के अनुरूप मध्ययुगीन वातावरण भी खोज लिया था। मध्ययुगीन काव्य राजाश्रय में सम्पादित हुआ था और 'रत्नाकर' जी ने पहले अवागढ़ के महाराजा और फिर अयोध्यानरेश के साथ रहकर अपने लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त कर लिया था। 'रत्नाकरजी' की काव्य-प्रतिभा में युगीन प्रभाव तथा आधुनिकता का भी कुछ संस्पर्श है और वह समकालीन कवियों, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त, की भाँति कथाकाव्य की रचना में दृष्टिगत होता है। इन्हीं कवियों की भाँति रत्नाकरजी ने अपने कथा-काव्यों में राजाश्रित कवियों की भाँति केवल भावुकता का ही प्रदर्शन नहीं किया अपितु व्यापक सहृदयता का भी परिचय दिया है।

रत्नाकरजी के गौरव-ग्रंथों में 'उद्धव शतक' और 'गंगावतरण' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम प्रवंध 'मुक्तक' है और उसमें कृष्ण-काव्य का प्रसिद्ध उद्धव-गोपी संवाद का प्रसंग नूतन काव्य-संगठन और काव्य-सौष्ठव के साथ उपस्थित किया गया है। रत्नाकरजी के 'गंगावतरण' में उनकी काव्य-प्रतिभा का और भी व्यापक स्वरूप दृष्टिगत होता है। प्राचीन साहित्य, विशेष रूप से पुराणों के सम्यक अनुशीलन के आधार पर लिखित इस कथा-काव्य में मर्म-स्पर्शी स्थलों को भली प्रकार पहचाना गया है तथा उनका पूर्ण सरसता के साथ वर्णन किया गया है। रत्नाकरजी की मुक्तक रचनाओं के संग्रह 'श्रृंगार लहरी', 'गंगा लहरी', 'विष्णु लहरी', 'रत्नाष्टक' आदि में यह आलंकारिक शोभा और भी स्वच्छन्द रूप से दृष्टिगत होती है। रीतिकालीन अलंकारवादियों से रत्नाकरजी की विशेषता यह है की उनकी भाँति यह सौन्दर्य-विधान बौधिक व्यायाम की सृष्टि नहीं वरन् आन्तरिक प्रेरणा से सहज प्रसूत है। रत्नाकरजी अपनी इन मुक्तक रचनाओं में इस दृष्टि से भी रीतियुगीन कवियों से आगे बढ़ गये हैं कि इनमें इन्होंने पौराणिक विषयों से लेकर देशभक्ति की आधुनिक भावना तक को वाणी दी है।

रत्नाकरजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें हमें प्राचीन और मध्ययुगीन समस्त भारतीय साहित्य का सौष्ठव बड़े स्वस्थ, समुज्ज्वल और मनोरम रूप में उपलब्ध है।

नाम = बनारसी मिश्र
कक्षा = 12
विषय गद्यगरिमा

उद्धव-प्रसंग

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावँनि मैं पावन जबै लगीं ॥
कहै 'रतनाकर' गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं ।
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगीं ।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ॥१॥

चाहत जो स्ववस सँजोग स्याम-सुन्दर कौ
जोग के प्रयोग मैं हियौ तौ बिलस्यो रहै ।
कहै 'रतनाकर' सु-अंतर-मुखी है ध्यान
मंजु हिय-कंज-जगी जोति मैं धस्यौ रहै ॥
ऐसैं करौं लीन आतमा कौं परमातमा मैं
जामैं जड़-चेतन-बिलास बिकस्यौ रहै ।
मोह-बस जोहत बिछोह जिय जाकौ छोहि
सो तौ सत्र अंतर-निरन्तर बस्यौ रहै ॥२॥

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी हैं ।
कहै 'रतनाकर' रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं ॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं ।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं ॥३॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की ।
कहै 'रतनाकर' पै प्रीति-रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की ॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम
तौहूँ हमें भावति ना भावना अन्यारी की ।
जैहै बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की ॥४॥

चिंता-मनि मंजुल पँवारि धूर-धारनि मैं
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ ।
कहै 'रतनाकर' वियोग-आगि सारन कौं
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ ॥
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ ।
एते बड़े बिस्व माँहि हेरैं हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहौ ॥५॥

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना ।
कहै 'रतनाकर' दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं, तौपै अधिक बढ़ावौ ना ॥
टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन पाहन चलावौ ना ।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥६॥

ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजौ एक
जानति अनेक न बिबेक ब्रज-बारी हैं।
कहै 'रतनाकर' असीम रावरी तौ छमा
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर
कीजै न दरस-रस बंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं
जो कहैं सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं॥७॥

धाइं जित तित तैं बिदाई - हेतु ऊधव की
गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसुरी।
कहै 'रतनाकर' मयूर-पच्छ कोऊ लिए
कोऊ गुंज-अंजली उमाहै प्रेम-आँसुरी॥
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुरबारी दई बाँसुरी॥८॥

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै 'रत्नाकर' यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बँहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका-पठाई है॥९॥

ब्रज-रज-रंजित सरीर सुभ ऊधव को
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाए लेत।
कहै 'रतनाकर' सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत।
कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत ।।१०।।

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै 'रतनाकर' बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं।।
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाब जौ न रावरे चितावन को
तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं।।११।।
(उद्धव शतक से)

गंगावतरण

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल-खंडति।
धाई धार अपार वेग सौं वायु विहंडति।।
भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तरजे।
महामेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गरजे।।१।।

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति।।

चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा ॥२॥

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैधों आवति झुकति सुभ्र आभा रुचि रूरी॥
मीन-मकर-जलब्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल छबि छाई॥३॥

रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति विस्तर।
झरति बूंद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर॥
ताके नीचैं राग-रंग के ढंग जमाये।
सुर-बनितनि के बृंद करत आनंद-बधाये ॥४॥

कबहुं सु धार अपार बेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै॥
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न हीर की रासि उसावत ॥५॥

ईंहिं विधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी।
मनहुँ सँवारति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी॥
विपुल वेग बल विक्रम कैं ओजनि उमगाई।
हरहराति हरषाति संभु सनमुख जब आई ॥६॥

भई थकित छबि चकित हेरि हर-रूप मनोहर।
ह्वै आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर॥
भयो कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष रुखाई॥७॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी ॥
दियौ सीस पर ठाम बाम करि कै मनमानी ॥
सकुचति ऐचति अंग गंग सुख संग लजानी ।
जटा-जूट हिम कूट सघन बन सिमिटि समानी ॥८॥
(गंगावतरण से)

प्रश्न-अभ्यास

१. रत्नाकरजी की काव्य-रचनाओं में भक्तिकालीन प्रवृत्तियों का निरूपण कीजिए ।
२. रत्नाकरजी की रचनाओं में रीतिकालीन कवियों का प्रभाव समुचित उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिए ।
३. सूरदासजी के 'भ्रमर-गीत' के पठित पदों के साथ 'उद्धव-शतक' के पदों की तुलना कीजिए और उनके साम्य एवं अन्तर को समझाइए ।
४. रत्नाकरजी के 'उद्धव-शतक' के आधार पर यह स्पष्ट कीजिए कि उन्हें मार्मिक स्थलों की भली प्रकार पहचान है ।
५. 'गंगावतरण' के आधार पर रत्नाकरजी के काव्य-सौष्ठव की विवेचना कीजिए ।
६. निम्नांकित प्रयोगों का सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए—
   (क) कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप ।
   (ख) चिंता-मनि मंजुल पँवारि धूरि धारनि मैं,
       काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ ।
   (ग) टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारो हाय,
       चूकि हू कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना ।
७. व्याख्या कीजिए—
   (क) सुनि सुनि……………………सहमि सुखानी हैं ।
   (ख) प्रेम मद छाके………………पठाई है ।
   (ग) छावते कुटीर…………………धरते नहीं ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म सन् १८६५ ई० में निजामाबाद, जिला आजमगढ़ (उ० प्र०) में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० भोला सिंह उपाध्याय था। पांच वर्ष की अवस्था में फारसी के माध्यम से इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। वर्नाक्यूलर मिडिल पास करके ये क्वींस कालेज बनारस में अंग्रेजी पढ़ने गये पर अस्वस्थता के कारण अध्ययन छोड़ना पड़ा। स्वाध्याय से इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। निजामाबाद के मिडिल स्कूल के अध्यापक, कानूनगो और काशी विश्वविद्यालय में अवैतनिक शिक्षक के पदों पर इन्होंने कार्य किया। सन् १९४५ में इनका देहावसान हो गया।

हरिऔधजी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि और गद्य लेखक थे। इनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ 'प्रियप्रवास' (खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य), 'वैदेही बनवास' (करुणरस-प्रधान महाकाव्य), 'पारिजात' (स्फुट गीतों का क्रमबद्ध संकलन), 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' (दोनों बोलचाल वाली मुहावरों युक्त भाषा में लिखित स्फुट काव्य-संग्रह) और 'रसकलश' (ब्रजभाषा के छंदों का संकलन) हैं। 'अधखिला फूल' (उपन्यास), 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (उपन्यास), 'रुक्मिणी परिणय' (नाटक) आदि मौलिक गद्य रचनाओं के अतिरिक्त आलोचनात्मक और अनूदित रचनाएँ भी इनकी हैं।

ये पहले ब्रजभाषा में कविता किया करते थे, 'रसकलश' जिसका सुन्दर उदाहरण है। महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से ये खड़ी बोली के क्षेत्र में आये और खड़ी बोली काव्य को नया रूप प्रदान किया। भाषा, भाव, छंद और अभिव्यंजना की घिसीपिटी परम्पराओं को तोड़कर इन्होंने नयी मान्यताएँ स्थापित ही नहीं कीं अपितु उन्हें मूर्त रूप भी प्रदान किया। इनकी बहुमुखी प्रतिभा और साहस के कारण ही काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष को नवीन आयाम प्राप्त हुए।

वर्ण्य विषय की विविधता हरिऔधजी की प्रमुख विशेषता है। यही कारण है कि इनके काव्य वृत्त में भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल के उज्ज्वल बिन्दु समाहित हो सके हैं। प्राचीन कथानकों में नवीन उद्भावनाओं के दर्शन 'प्रियप्रवास', 'वैदेही वनवास' आदि सभी रचनाओं में होते हैं। ये काव्य के 'शिव' रूप का सदैव ध्यान रखते थें। इसी हेतु इनके राधा-कृष्ण, राम-सीता भक्तों के भगवान मात्र न होकर जननायक और जनसेवक हैं। प्रकृति के विविध रूपों और प्रकारों का सजीव चित्रण हरिऔधजी की अन्यान्य विशेषताओं में से एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भावुकता

के साथ मौलिकता को भी इनके काव्य की विशेषता कहा जा सकता है। हरिऔधजी मूलत: करुण और वात्सल्य रस के कवि थे। करुण रस को ये प्रधान रस मानते थे और उसकी मार्मिक व्यंजना इनके काव्य में सर्वत्र देखने को मिलती है। वात्सल्य और विप्रलम्भ शृंगार के हृदयस्पर्शी चित्र प्रियप्रवास में यथेष्ट हैं। अन्य रसों के भी सुन्दर उदाहरण इनके स्फुट काव्य में मिलते हैं।

भाषा की जैसी विविधता हरिऔधजी के काव्य में है, वैसी विविधता महाकवि निराला के अतिरिक्त अन्य किसी के काव्य में नहीं है। इन्होंने कोमलकान्त पदावलीयुक्त ब्रजभाषा—'रसकलश' में, संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली—'प्रियप्रवास' में, मुहावरेयुक्त वोलचाल की खड़ी वोली—'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' में पूर्ण अधिकार और सफलता के साथ प्रयुक्त की है। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए इन्हें "द्विकलात्मक कला" में सिद्धहस्त कहा है। इन्होंने प्रबंध और मुक्तक शैलियों में सफल काव्य-रचनाएँ की हैं। इतिवृत्तात्मक, मुहावरेदार, संस्कृत काव्य, चमत्कारपूर्ण सरल हिन्दी शैलियों का अभिव्यंजना-शिल्प की दृष्टि से सफल प्रयोग भी किया है।

अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग इनके काव्य में है। इन्होंने हिन्दी के पुराने तथा संस्कृत छंदों को अपनाया है। कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि इनके पुराने प्रिय छंद हैं और इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, मालिनी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित आदि संस्कृत वर्णवृत्तों का प्रयोग कर इन्होंने हिन्दी छंदों के क्षेत्र में युगान्तर ही उपस्थित कर दिया।

ये 'कविसम्राट', 'साहित्य-वाचस्पति' आदि उपाधियों से सम्मानित हुए। अपने जीवनकाल में अनेक साहित्य सभाओं और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति रहे। हरिऔध की साहित्यिक सेवाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। निस्संदेह ये हिन्दी साहित्य की एक महान विभूति हैं।

पवन-दूतिका

बैठी खिन्ना यक दिवस वे गेह में थीं अकेली।
आके आंसू दृग-युगल में थे धरा को भिगोते।
आई धीरे इस सदन में पुष्प-सद्‌गंध को ले।
प्रातः वाली सुपवन इसी काल वातायनों से ॥१॥

संतापों को विपुल बढ़ता देख के दुःखिता हो।
धीरे बोलीं स दुख उससे श्रीमती राधिका यों।
प्यारी प्रातः पवन इतना क्यों मुझे है सताती।
क्या तू भी है कलुषित हुई काल की क्रूरता से ॥२॥

मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्रवाले।
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा संदेसा।
मैं रो-रो के प्रिय-विरह से बावली हो रही हूँ।
जा के मेरी सब दुख-कथा श्याम को तू सुना दे ॥३॥

ज्यों ही मेरा भवन तज तू अल्प आगे बढ़ेगी।
शोभावाली सुखद कितनी मंजु कुंजें मिलेंगी।
प्यारी छाया मृदुल स्वर से मोह लेंगी तुझे वे।
तो भी मेरा दुख लख वहाँ जा न विश्राम लेना ॥४॥

थोड़ा आगे सरस रव का धाम सत्पुष्पवाला।
अच्छे-अच्छे बहु द्रुम लतावान सौन्दर्यशाली।
प्यारा वृन्दाविपिन मन को मुग्धकारी मिलेगा।
आना जाना इस विपिन से मुह्यमाना न होना ॥५॥

जाते जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे।
तो जा के सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
धीरे धीरे परस करके गात उत्ताप खोना।
सद्‌गंधों से श्रमित जन को हर्षितों सा बनाना ॥६॥

लज्जाशीला पथिक महिला जो कहीं दृष्टि आये।
होने देना विकृत-वसना तो न तू सुन्दरी को।
जो थोड़ी भी श्रमित वह हो गोद ले श्रान्ति खोना।
होठों की औ कमल-मुख की म्लानतायें मिटाना ॥७॥

कोई क्लान्ता कृषक-ललना खेत में जो दिखावे।
धीरे धीरे परस उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
जाता कोई जलद यदि हो व्योम में तो उसे ला।
छाया द्वारा सुखित करना, तप्त भूतांगना को ॥८॥

जाते जाते पहुँच मथुरा-धाम में उत्सुका हो।
न्यारी शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना।
तू होवेगी चकित लख के मेरु से मन्दिरों को।
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क से हैं ॥९॥

देखे पूजा समय मथुरा मन्दिरों मध्य जाना।
नाना वाद्यों मधुर स्वर की मुग्धता को बढ़ाना।
किंवा ले के रुचिर तरु के शब्दकारी फलों को।
धीरे धीरे मधुर रव से मुग्ध हो हो बजाना ॥१०॥

तू देखेगी जलद-तन को जा वहीं तद्गता हो।
होंगे लोने नयन उनके ज्योति-उत्कीर्णकारी।
मुद्रा होगी वर वदन की मूर्त्ति सी सौम्यता की।
सीधे साधे वचन उनके सिक्त होंगे सुधा से ॥११॥

नीले फूले कमल दल सी गात की श्यामता है।
पीला प्यारा बसन कटि में पैन्हते हैं फबीला।
छूटी काली अलक मुख की कान्ति को है बढ़ाती।
सद्वस्त्रों में नवल तन की फूटती सी प्रभा है ॥१२॥

साँचे ढाला सकल वपु है दिव्य सौंदर्यशाली।
सत्पुष्पों-सी सुरभि उसकी प्राण-संपोषिका है।
दोनों कंधे वृषभ-वर से हैं बड़े ही सजीले।
लम्बी बाँहें कलभ-कर सी शक्ति की पेटिका हैं ॥१३॥

राजाओं सा शिर पर लसा दिव्य आपीड़ होगा।
शोभा होगी उभय श्रुति में स्वर्ण के कुण्डलों की।
नाना रत्नाकलित भुज में मंजु केयूर होंगे।
मोतीमाला लसित उनका कम्बु सा कंठ होगा ॥१४॥

तेरे में है न यह गुण जो तू व्यथायें सुनाये।
व्यापारों को प्रखर मति औ युक्तिओं से चलाना।
बैठे जो हों निज सदन में मेघ सी कान्तिवाले।
तो चित्रों को इस भवन के ध्यान से देख जाना ॥१५॥

जो चित्रों में विरह-विधुरा का मिले चित्र कोई।
तो जा जाके निकट उसको भाव से यों हिलाना।
प्यारे हो के चकित जिससे चित्र की ओर देखें।
आशा है यों सुरति उनको हो सकेगी हमारी ॥१६॥

जो कोई भी इस सदन में चित्र उद्यान का हो।
औ हों प्राणी विपुल उसमें घूमते बावले से।
तो जाके सन्निकट उसके औ हिला के उसे भी।
देवात्मा को सुरति ब्रज के व्याकुलों की कराना ॥१७॥

कोई प्यारा कुसुम कुम्हला गेह में जो पड़ा हो।
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसी को।
यों देना ऐ पवन बतला फूल सी एक बाला।
म्लाना हो हो कमल-पग को चूमना चाहती है ॥१८॥

जो प्यारे मंजु उपवन या वाटिका में खड़े हों।
छिद्रों में जा क्वणित करना वेणु सा कीचकों को।
यों होवेगी सुरति उनको सर्व गोपांगना की।
जो हैं वंशी श्रवण-रुचि से दीर्घ उत्कण्ठ होतीं ॥१९॥

ला के फूले कमलदल को श्याम के सामने ही।
थोड़ा थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो हो डुबाना।
यों देना ऐ भगिनि जतला एक अंभोजनेत्रा।
आँखों को हो विरह-विधुरा वारि में बोरती है ॥२०॥

धीरे लाना वहन कर के नीप का पुष्प कोई।
औ प्यारे के चपल दृग के सामने डाल देना।
ऐसे देना प्रकट दिखला नित्य आशंकिता हो।
कैसी होती विरहवश मैं नित्य रोमांचिता हूँ ॥२१॥

बैठे नीचे जिस विटप के श्याम होवें उसी का।
कोई पत्ता निकट उनके नेत्र के ले हिलाना।
यों प्यारे को विदित करना चातुरी से दिखाना।
मेरे चिन्ता-विजित चित का क्लान्त हो काँप जाना ॥२२॥

सूखी जाती मलिन लतिका जो धरा में पड़ी हो।
तो पाँवों के निकट उसको श्याम के ला गिराना।
यों सीधे से प्रकट करना प्रीति से वंचिता हो।
मेरा होना अति मलिन औ सूखते नित्य जाना ॥२३॥

कोई पत्ता नवल तरु का पीत जो हो रहा हो।
तो प्यारे के दृग युगल के सामने ला उसे ही।
धीरे धीरे सँभल रखना औ उन्हें यों बताना।
पीला होना प्रवल दुख से प्रोषिता सा हमारा ॥२४॥

यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथायें।
धीरे धीरे वहन कर के पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी सी भी चरण-रज जो ला न देगी हमें तू।
हा ! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूँगी ।।२५।।

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ चली जा।
छू के प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आ जा।
जी जाऊँगी हृदयतल में मैं तुझी को लगाके ।।२६।।

(प्रियप्रवास से)

प्रश्न-अभ्यास

१. "हरिऔधजी ने अपने प्रियप्रवास में राधा और कृष्ण दोनों को ही आज के युग के अनुरूप नया स्वरूप प्रदान किया है।" इस कथन से आप कहां तक सहमत हैं ?
२. हरिऔधजी ने 'पवन-दूतिका' प्रसंग में राधा को जो नया रूप प्रदान किया है, उसका निरूपण कीजिए।
३. राधा ने पवन को दूती बनाते हुए उसके आगे कृष्ण का जो स्वरूप चित्रित किया है, उसे अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
४. राधा ने कृष्ण का ध्यान अपने प्रति आकर्षित करने के लिए पवन को किन-किन युक्तियों का आश्रय लेने का परामर्श दिया है ?
५. हरिऔधजी ने राधा की वियोग-व्यथा का वर्णन करते हुए उन्हें जो लोक-मंगल की साधना में तत्पर होते हुए दिखाया है, उसे आप कहाँ तक उपयुक्त समझते हैं ?
६. हरिऔधजी ने व्रजभूमि और मथुरा नगर के जो वर्णन प्रस्तुत किये हैं, उन्हें अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए।
७. निम्नलिखित स्थलों की उनका काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट करते हुए व्याख्या लिखिए—
   (क) कोई क्लान्ता कृषक-ललना..........तप्त भूतांगना को।
   (ख) कोई प्यारा कुसुम..................चाहता है।
   (ग) सूखी जाती..................सूखते नित्य जाना।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगांव, जिला झांसी में सन् १८८६ ई० में हुआ था। काव्य-रचना की ओर बाल्यावस्था से ही इनका झुकाव था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से इन्होंने हिन्दी काव्य की नवीन धारा को पुष्ट कर उसमें अपना विशेष स्थान बना लिया था। इनकी कविता में देश-भक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम की व्यंजना प्रमुख होने के कारण इन्हें हिन्दी-संसार ने 'राष्ट्र-कवि' का सम्मान दिया। राष्ट्रपति ने इन्हें संसद-सदस्य मनोनीत किया। भारती का यह साधक सन् १९६४ में गोलोकवासी हो गया।

गुप्तजी की रचना-सम्पदा विशाल है। इनकी विशेष ख्याति रामचरित पर आधारित महाकाव्य 'साकेत' के कारण है। 'जयद्रथ बध', 'भारत-भारती', 'अनघ', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'सिद्धराज' आदि गुप्तजी की अन्य प्रसिद्ध काव्य-कृतियां हैं।

गुप्तजी आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवियों में हैं। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में इतिवृत्त-कथन का रूखापन है। पद्य में कही गयी इन कहानियों में भावात्मक सरसता का अभाव है। 'भारत-भारती' आदि प्रारंभिक रचनाएँ ऐसी ही हैं। छायावाद के आगमन के साथ गुप्तजी की कविता में भी लाक्षणिक वैचित्र्य और मनोभावों की सूक्ष्मता की मार्मिकता आयी। गुप्तजी का झुकाव भी गीति-काव्य की ओर हुआ। प्रबंध के भीतर ही गीति-काव्य का समावेश करके गुप्तजी ने भाव-सौन्दर्य के मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण 'यशोधरा' और 'साकेत' जैसी उत्कृष्ट काव्य-कृतियों का सृजन किया। गुप्तजी के काव्य की यह प्रधान विशेषता है कि गीति-काव्य के तत्वों को अपनाने के कारण उसमें सरसता आयी है, पर प्रबंध की धारा की भी उपेक्षा नहीं हुई। गुप्तजी के कवित्व के विकास के साथ इनकी भाषा का बहुत परिमार्जन हुआ। उसमें धीरे-धीरे लाक्षणिकता, संगीत और लय के तत्वों का प्राधान्य हो गया।

राष्ट्र-प्रेम गुप्तजी की कविता का प्रमुख स्वर है। 'भारत-भारती' में प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रेरणाप्रद चित्रण हुआ है। इस रचना में व्यस्त स्वदेश-प्रेम ही इनकी परवर्ती रचनाओं में राष्ट्र-प्रेम और नवीन राष्ट्रीय भावनाओं में परिणत हो गया। इनकी कविता में आज की समस्याओं और विचारों के स्पष्ट दर्शन होते हैं। गांधीवाद तथा कहीं-कहीं आर्यसमाज का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। अपने काव्यों की कथावस्तु गुप्तजी ने आज के जीवन से न लेकर प्राचीन इतिहास अथवा पुराणों

से ली है। वे अतीत की गौरव गाथाओं को वर्तमान जीवन के लिए मानवतावादी
नैतिक प्रेरणा देने के उद्देश्य से ही अपनाते हैं।

गुप्तजी की चरित्र कल्पना में कहीं भी अलौकिकता के लिए स्थान नहीं है। इन
सारे चरित्र मानव हैं, उनमें देव और दानव नहीं हैं। इनके राम, कृष्ण, गौतम आदि
प्राचीन और चिरकाल से हमारी श्रद्धा प्राप्त किये हुए पात्र हैं। इसीलिए वे जीवन-प्रेरणा
और स्फूर्ति प्रदान करते हैं। "साकेत" के राम 'ईश्वर' होते हुए भी तुलसी की भाँति
'आराध्य' नहीं, हमारे ही बीच के एक व्यक्ति हैं।

नारी के प्रति गुप्तजी का हृदय सहानुभूति और करुण से आप्लावित है। 'यशोधरा'
'उर्मिला', 'कैकेयी,' 'विधृता', 'रानकदे' आदि नारियाँ गुप्तजी की महत्त्वपूर्ण सृष्टि हैं।

गुप्तजी की भाव-व्यंजना में सर्वत्र ही जीवन की गम्भीर अनुभूति के दर्शन होते हैं।
इन्होंने कल्पना का आश्रय तो लिया है, पर इनके भाव कहीं भी मानव की स्वाभाविकता
का अतिक्रमण नहीं करते। इनके काव्य में सीधी और सरल भाषा में इतनी सुन्दर भाव
व्यंजना हो जाने का एकमात्र कारण जीवन की गंभीर अनुभूति ही है।

गुप्तजी खड़ी बोली को हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने वाले समर्थ कवि
रूप में विशेष महत्त्व रखते हैं। सरल, शुद्ध, परिष्कृत खड़ी बोली में कविता करके इन्होंने
ब्रजभाषा के स्थान पर उसे समर्थ काव्य-भाषा सिद्ध कर दिखाया। स्थान-स्थान पर
लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोगों से उनकी काव्य-भाषा और भी जीवन्त हो उठी।
प्राचीन एवं नवीन सभी प्रकार के अलंकारों का गुप्तजी के काव्य में भाव-सौन्दर्यवर्द्धक
स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। सभी प्रकार के प्रचलित छंदों में इन्होंने काव्य-रचना की।

गुप्तजी युगीन चेतना और इसके विकसित होते हुए रूप के प्रति सजग थे। इसकी
स्पष्ट झलक इनके काव्य में मिलती है। राष्ट्र की आत्मा को वाणी देने के कारण
राष्ट्र-कवि कहलाये और आधुनिक हिन्दी काव्य की धारा के साथ विकास-पथ पर
हुए युग-प्रतिनिधि कवि स्वीकार किये गये।

कैकेयी का अनुताप

तदनन्तर बैठी सभा उटज के आगे,
नीले वितान के तले दीप बहु जागे।
टकटकी लगाये नयन सुरों के थे वे,
परिणामोत्सुक उन भयातुरों के थे वे।
उत्फुल्ल करौंदी-कुञ्ज वायु रह रहकर,
करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह महकर।
वह चन्द्रलोक था, कहाँ चाँदनी वैसी,
प्रभु बोले गिरा गभीर नीरनिधि जैसी।

"हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना,"
सब सजग हो गये, भंग हुआ ज्यों सपना।
"हे आर्य,रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब, तब भी ?
पाया तुमने तरु-तले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु तड़प तड़प कर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा ! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा।
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका ?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा ?"
प्रभु ने भाई को पकड़ हृदय पर खींचा,
रोदन जल से सविनोद उन्हें फिर सींचा !—

"उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको ?"

"यह सच है तो लौट चलो तुम घर को।"
चौंके सब सुनकर अटल केकयी-स्वर को।
सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृता यथा विधु-लेखा।
बैठी थी अचल तथापि असंख्यतरंगा,
वह सिंही अब थी हहा! गोमुखी गंगा—
"हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलाजन के लिए कौन-सा पथ है?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ?"
थी सनक्षत्र शशि-निशा ओस टपकाती,
रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती।
उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी,
सबमें भय-विस्मय और खेद भरती थी।
"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।

जल पंजर - गत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे।
पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मन में?
क्या शेष बचा था कुछ न और इस जन में ?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य-मात्र, क्या तेरा ?
पर आज अन्य - सा हुआ वत्स भी मेरा।
थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके ?

छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे ?
कहते आते थे यही अभी नरदेही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।'
अब कहें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता—
'है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।'
बस मैंने इसका बाह्य - मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा !
युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा—
'धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा'—"
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत - सा भाई।"
पागल - सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई—
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"

"हा ! लाल ? उसे भी आज गमाया मैंने,
विकराल कुयश ही यहाँ कमाया मैंने।
निज स्वर्ग उसी पर वार दिया था मैंने,
हर तुम तक से अधिकार लिया था मैंने।
पर वही आज यह दीन हुआ रोता है,
शंकित सबसे धृत हरिण-तुल्य होता है।
श्रीखण्ड आज अंगार-चण्ड है मेरा,
तो इससे बढ़कर कौन दण्ड है मेरा ?

पटके मैंने पद-पाणि मोह के नद में,
जन क्या क्या करते नहीं स्वप्न में, मद में ?
हा ! दण्ड कौन, क्या उसे डरूँगी अब भी?
मेरा विचार कुछ दयापूर्ण हो तब भी।
हा दया! हन्त वह घृणा ! अहह वह करुणा!
वैतरणी-सी हैं आज जाह्नवी वरुणा !
सह सकती हूँ चिर नरक, सुनें सुविचारी,
पर मुझे स्वर्ग की दया दण्ड से भारी।
लेकर अपना यह कुलिश-कठोर कलेजा,
मैंने इसके ही लिए तुम्हें वन भेजा।
घर चलो इसीके लिए, न रूठो अब यों,
कुछ और कहूँ तो उसे सुनेंगे सब क्यों ?
मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे,
मेरे दुगुने प्रिय रहो न मुझसे न्यारे।
मैं इसे न जानूं, किन्तु जानते हो तुम,
अपने से पहले इसे मानते हो तुम।
तुम भ्राताओं का प्रेम परस्पर जैसा,
यदि वह सब पर यों प्रकट हुआ है वैसा,"

तो पाप-दोष भी पुण्य-तोष है मेरा,
मैं रहूँ पंकिला, पद्म-कोष है मेरा।
आगत ज्ञानीजन उच्च भाल ले लेकर,
समझावें तुमको अतुल युक्तियाँ देकर।
मेरे तो एक अधीर हृदय है बेटा,
उसने फिर तुमको आज भुजा भर भेंटा।
देवों की ही चिरकाल नहीं चलती है,
दैत्यों की भी दुर्वृत्ति यहाँ फलती है।"
हँस पड़े देव केकयी-कथन यह सुनकर,
रो दिये क्षुब्ध दुर्दैव दैत्य सिर धुनकर!
"छल किया भाग्य ने मुझ अयश देने का,
बल दिया उसी ने भूल मान लेने का।
अब कटे सभी वे पाश नाश के प्रेरे,
मैं वही केकयी, वही राम तुम मेरे।
होने पर बहुधा अर्ध रात्रि अन्धेरी,
जीजी आकर करती पुकार थीं मेरी—
'लो कुहुकिनि, अपना कुहुक, राम यह जागा,
निज मँझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा!'
भ्रम हुआ भरत पर मुझे व्यर्थ संशय का,
प्रतिहिंसा ने ले लिया स्थान तब भय का।
तुम पर भी ऐसी भ्रान्ति भरत से पाती,
तो उसे मनाने भी न यहाँ मैं आती!—
जीजी ही आतीं, किन्तु कौन मानेगा?
जो अन्तर्यामी, वही इसे जानेगा।"
"हे अम्ब, तुम्हारा राम जानता है सब,
इस कारण वह कुछ खेद मानता है कब?"

"क्या स्वाभिमान रखती न केकयी रानी ?
बतला दे कोई मुझ उच्चकुल-मानी ।
सहती कोई अपमान तुम्हारी अम्बा ?
पर हाय, आज वह हुई निपट नालम्बा ?
मैं सहज मानिनी रही, सरल क्षत्राणी,
इस कारण सीखी नहीं दैन्य यह वाणी ।
पर महा दीन हो गया आज मन मेरा,
भावज्ञ, सहेजो तुम्हीं भाव-धन मेरा ।
समुचित ही मुझको विश्व- घृणा ने घेरा,
समझाता कौन सशान्ति मुझे भ्रम मेरा ?
यों ही तुम वन को गये, देव सुरपुर को,
मैं बैठी ही रह गई लिये इस उर को ।
बुझ गई पिता की चिता भरत-भुजधारी,
पितृभूमि आज भी तप्त तथापि तुम्हारी ।
भय और शोक सब दूर उड़ाओ उसका,
चलकर,सुचरित, फिर हृदय जुड़ाओ उसका ।
हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज्य सम्भालो,
मैं पाल सकी न स्वधर्म, उसे तुम पालो ।
स्वामी को जीते जी न दे सकी सुख मैं,
मरकर तो उनको दिखा सकूँ यह मुख मैं ।
मर मिटना भी है एक हमारी क्रीड़ा,
पर भरत-वाक्य है—सहूँ विश्व की व्रीड़ा ।
जीवन-नाटक का अन्त कठिन है मेरा,
प्रस्ताव मात्र में जहाँ अधैर्य अँधेरा ।
अनुशासन ही था मुझ अभी तक आता,
करती है तुमसे विनय आज यह माता—।"

(साकेत से)

गीत

निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये !
फैला उनके तन का आतप, मन से सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छाये !
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से यह बन्धूक सुहाये !
स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, लो, ये अश्रु अर्घ्य भर लाये ।।१।।

शिशिर, न फिर गिरि—वन में,
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में,
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में ।
सखी कह रही, पाण्डुरता का क्या अभाव आनन में ?
वीर, जमा दे नयन—नीर यदि तू मानस-भाजन में,
तो मोती-सा मैं अकिंचना रक्खूँ उसको मन में ।
हँसी गई, रो भी न सकूँ मैं,—अपने इस जीवन में,
तो उत्कण्ठा है, देखूँ फिर क्या हो भाव-भुवन में ।।२।।

मुझे फूल मत मारो,
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो ।
होकर मधु के मीत मदन, पटु, तुम कटु, गरल न गारो,
मुझे विकलता, तुम्हें विफलता, ठहरो, श्रम परिहारो ।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर-बिन्दु यह—यह हरनेत्र निहारो !
रूप-दर्प कन्दर्प, तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो ।।३।।

यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम-धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।

प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर,
व्यथा रहे, पर साथ साथ ही समाधान भरपूर।
हर्ष डूबा हो रोदन में,
यही आता है इस मन में।

बीच बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जायँ तब लेटूँ उसी धूल में लोट।
रहें रत वे निज साधन में,
यही आता है इस मन में।

जाती जाती, गाती गाती, कह जाऊं यह बात—
धन के पीछे जन, जगती में उचित नहीं उत्पात।
प्रेम की ही जय जीवन में।
यही आता है इस मन में ॥४॥

(साकेत से)

प्रश्न-अभ्यास

१. कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने राम-कथा कहते हुए जो नवीनताएँ उत्पन्न की हैं, अपने पठित अंश के आधार पर उन्हें स्पष्ट कीजिए।
२. गुप्तजी ने कैकेयी के चरित्र में जो नवीनताएँ उत्पन्न की हैं समुचित उद्धरण देते हुए उन्हें स्पष्ट कीजिए।
३. गुप्तजी ने कैकेयी के मन में आत्म-ग्लानि की भावना क्यों जगायी है—सतर्क उत्तर दीजिए।
४. राम के वन-गमन पर कैकेयी ने जो वर मांगा उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या कीजिए।

५. संकलित अंश के आधार पर भरत का चरित्र-चित्रण कीजिए।
६. स्वपठित अंश के आधार पर गुप्तजी की काव्यगत विशेषताओं का निरूपण कीजिए।
७. सूर और जायसी की कुछ ऐसी पंक्तियां उद्धृत कीजिए जिनमें 'निरख सखी ये खंजन आये' का भाव-साम्य देखने को मिले।
८. 'शिशिर न फिर गिरि वन में'—गीत की काव्य-शोभा की विवेचना कीजिए।
९. निम्नलिखित अंश के भावगत सौन्दर्य को स्पष्ट करते हुए व्याख्या लिखिए—
हे आर्य, रहा क्या भरत..............तदपि क्या मेरा ?

जयशंकर 'प्रसाद'

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी-साहित्य की श्रेष्ठ प्रतिभा हैं। द्विवेदी युग की स्थूल और इतिवृत्तात्मक कविता-धारा को सूक्ष्मभाव सौन्दर्य, रमणीयता एवं माधुर्य से परिपूर्ण कर प्रसादजी ने नवयुग का सूत्रपात किया। वे छायावाद के प्रवर्त्तक, उन्नायक तथा प्रतिनिधि कवि होने के साथ ही युग-प्रवर्तक, नाटककार एवं कहानीकार भी हैं।

प्रसादजी का जन्म माघ शुक्ल दशमी संवत १९४६ को काशी में सुंघनी साहु नाम से प्रसिद्ध वैश्य परिवार में हुआ था। परिवारजनों की मृत्यु, अर्थ-संकट, पत्नी-वियोग आदि संघर्षों को अत्यन्त जीवट से झेलता हुआ यह अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न युगस्रष्टा साहित्यकार हिन्दी के मंदिर में अपूर्व गन्धमय रचना-सुमन अर्पित करता रहा। संवत १९९४ वि० में उनका रोग-जर्जर शरीर निष्प्राण होकर हिन्दी-साहित्य के एक अध्याय का पटाक्षेप कर गया।

'चित्राधार', 'कानन-कुसुम', 'झरना', 'लहर', 'प्रेम पथिक', 'आँसू', 'कामायनी' आदि प्रसादजी की प्रमुख काव्य-कृतियां हैं। 'कामायनी' हिन्दी काव्य का गौरव ग्रंथ है। 'राज्यश्री', 'विशाख', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि उनके उत्कृष्ट नाटक हैं। अनेक कहानी-संग्रह, कई उपन्यास तथा निबंधों की रचना करके प्रसादजी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का प्रसाद हिन्दी को प्रदान किया।

प्रसादजी का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवीय रहा है। उसमें आध्यात्मिक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है। वे जीवन की चिरन्तन समस्याओं का कोई चिरन्तन माननीय समाधान खोजना चाहते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य ही उच्च मानवता है। उसी की प्रतिष्ठा प्रसादजी ने की है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का यह समन्वय ही भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है और 'कामायनी' के माध्यम से यही संदेश प्रसादजी ने सम्पूर्ण मानवता को दिया है।

प्रसादजी की प्रारंभिक रचनाओं में ही, संकोच और झिझक होते हुए भी कुछ कहने को आकुल चेतना के दर्शन होते हैं। 'चित्राधार' में वे प्रकृति की रमणीयता और माधुर्य पर मुग्ध हैं। 'प्रेम पथिक' में प्रकृति की पृष्ठभूमि में कवि हृदय में मानव-सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा का भाव जागता है। 'आंसू' प्रसादजी का उत्कृष्ट, गम्भीर, विशुद्ध मानवीय विरह काव्य है, जो प्रेम के स्वर्गीय रूप का प्रभाव छोड़ता है। इसीलिए कुछ लोग इसे आध्यात्मिक विरह का काव्य मानने का आग्रह करते हैं। 'कामायनी' प्रसाद-

काव्य की सिद्धावस्था है, उनकी काव्य-साधना का पूर्ण परिपाक है। कवि ने मनु और श्रद्धा के बहाने पुरुष और नारी के शाश्वत स्वरूप एवं मानव के मूल मनोभावों का काव्यमय चित्र अंकित किया है। काव्य, दर्शन और मनोविज्ञान की त्रिवेणी 'कामायनी' निश्चय ही 'आधुनिक काल की सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक रचना' है।

प्रसादजी छायावादी कवि हैं। प्रेम और सौन्दर्य उनके काव्य का प्रधान विषय है। मानवीय संवेदना उसका प्राण है। प्रकृति को सचेतन अनुभव करते हुए उसके पीछे परम सत्ता का आभास कवि ने सर्वत्र किया है। यही उनका रहस्यवाद है। प्रसाद का रहस्यवाद साधनात्मक नहीं है। वह भावसौन्दर्य से संचालित प्रकृति का रहस्यवाद है। अनुभूति की तीव्रता, वेदना, कल्पना-प्रवणता आदि प्रसाद-काव्य की कतिपय अन्य विशेषताएँ हैं।

प्रसादजी ने काव्य-भाषा के क्षेत्र में भी युगान्तर उपस्थित किया है। द्विवेदीयुग की अभिधा-प्रधान भाषा और इतिवृत्तात्मक शैली के स्थान पर प्रसादजी ने भावानुकूल चित्रोपम शब्दों का प्रयोग किया है। लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता से युक्त प्रसादजी की भाषा में अद्भुत नाद-सौन्दर्य और ध्वन्यात्मकता है। चित्रात्मक भाषा में संगीतमय चित्र अंकित किये हैं।

प्रसादजी ने प्रवंध तथा गीति-काव्य दोनों रूपों में समान अधिकार से श्रेष्ठ काव्य-रचना की है। 'लहर', 'झरना' आदि उनकी मुक्तक काव्य रचनाएँ हैं। प्रवंध-काव्यों में 'कामायनी' जैसा रत्न उन्होंने दिया है।

प्रसादजी का काव्य अलंकारों की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध है। प्रायः सादृश्यमूलक अर्थालंकारों में ही प्रसादजी की वृत्ति अधिक रमी है। परम्परागत अलंकारों को ग्रहण करते हुए भी प्रसादजी ने नवीन उपमानों का प्रयोग करके उन्हें नयी भंगिमा प्रदान की है। अमूर्त उपमान-विधान उनकी विशेषता है। मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजना, विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य प्रभाव से गृहीत आधुनिक अलंकारों के भी सुन्दर प्रयोग प्रसादजी की रचनाओं में मिलते हैं। विविध छंदों का प्रयोग और नवीन छंदों की उद्भावना भी प्रसादजी ने की है। वस्तुतः प्रसादजी का साहित्य अनन्त वैभव सम्पन्न है।

अरुण यह मधुमय देश हमारा

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर—मंगल कुंकुम सारा!
लघु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा-जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम-कुंभ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊंघते रहते जब—जगकर रजनी भर तारा।।

(चन्द्रगुप्त से)

गीत

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर-पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा-नागरी।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लायी—
मधु-मुकुल नवल-रस गागरी।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये-
तू अब तक सोयी है आली!
आँखों में भरे विहाग री।

(लहर से)

जयशंकर 'प्रसाद'

आंसू

इस करुणा - कलित हृदय में
अब विकल रागनी बजती,
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

मानस-सागर के तट पर
क्यों लोल 'लहर की घातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहती
कुछ विस्मृत बीती बातें

आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
टकराती बिलखाती-सी
पगली-सी देती फेरी ?

बस गयी एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील-निलय में।

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महा 'मिलन के।

जो घनीभूत पीड़ा' थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बसरने आयी।

क्यों छलक रहा दुख मेरा
ऊषा की मृदु पलकों में
हाँ ! उलझ रहा सुख मेरा
सध्या की घन अलकों में।

(आँसू से)

श्रद्धा-मनु

"कौन-तुम ? संसृति - जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक;
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक?
मधुर विश्रान्त और एकांत–
जगत का सुलझा हुआ रहस्य;
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य !"
सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का - सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद।
एक झिटका सा लगा सहर्ष ,
निरखने लगें लुटे से, कौन—
गा रहा यह सुन्दर संगीत ?
कुतूहल रह न सका फिर मौन।
और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम ;
कुसुम-वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम ;

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त ;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त ।

मसृण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म,
ढक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म ।

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग ।

ओह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घन श्याम ;
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम !

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंश अवलंबित मुख के पास;
नील घन-शावक-से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास ।

और उस मुख पर वह मुसक्यान
रक्त किसलय पर ले विश्राम;
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ।

कहा मनु ने, "नभ धरणी बीच
बना जीवन रहस्य निरुपाय;
एक उल्का सा जलता भ्रांत,
शून्य में फिरता हूँ असहाय।"

'कौन हो तुम वसंत के दूत
बिरस पतझड़ में अति सुकुमार;
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार!

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति
मिटाता उत्कंठा सबिशेष;
दे रहा हो कोकिल सानन्द
सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश—

"भरा था मन में नव उत्साह
सीख लूं ललित कला का ज्ञान;
इधर रह गंधर्वों के देश
पिता की हूँ प्यारी संतान।

दृष्टि जब जातीहिम-गिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर;
धरा की यह सिकुड़न भयभीत
आह कैसी है ? क्या है पीर ?

बढ़ा मन और चले ये पैर
शैल मालाओं का श्रृंगार;
आँख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुन्दर सम्भार।

यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न
भूत-हित-रत किसका यह दान !
इधर कोई है अभी सजीव,
हुआ ऐसा मन में अनुमान ।

तपस्वी ! क्यों इतने हो क्लांत,
वेदना का यह कैसा वेग ?
आह! तुम कितने अधिक हताश!
बताओ यह कैसा उद्वेग ?

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात ।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल;
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल ।"

लगे कहने मनु सहित विषाद :—
"मधुर मारुत से ये उच्छ्वास;
अधिक उत्साह तरंग अबाध
उठाते मानस में सविलास ।

किंतु जीवन कितना निरुपाय !
लिया है देख नहीं संदेह ;
निराशा है जिसका परिणाम
सफलता का वह कल्पित गेह ।"

कहा आगंतुक ने सस्नेह :—
"अरे, तुम इतने हुए अधीर ;
हार बैठे जीवन का दाँव
जीतते मर कर जिसको वीर ।

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद ;
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद ।

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल ;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल ;

एक तुम, यह विस्तृत भूखंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद ;
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द ।

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते? तुच्छ विचार ;
तपस्वी ! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म-विस्तार ।

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार ;
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार ।

बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल ;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल ।

'और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान—
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो'
विश्व में गूँज रहा, जय गान ।

'डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगल मय वृद्धि ;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र
खिंची आवेगी सकल समृद्धि !

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण ;
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुंज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण ।

उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहें खड़ी सानन्द ;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बंद ।

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप, कच्छप डूबें उतराय ;
किंतु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय ।

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।"

(कामायनी से)

प्रश्न-अभ्यास

१. 'श्रद्धा-मनु' के संवाद में प्रसादजी ने जीवन का क्या संदेश दिया है ?
२. संकलित अंश के आधार पर श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य का निरूपण कीजिए।
३. आँसू से संकलित अंश के आधार पर प्रेम और व्यथा का कौन-सा रूप उभरता है? इस स्वरूप का अपने शब्दों में निरूपण कीजिए।
४. 'आँसू' से संकलित अंश में कौन-सा रस है ? उसका लक्षण दीजिए तथा इसी अंश के उदाहरणों से उसके तत्वों का प्रतिपादन कीजिए।
५. 'श्रद्धा और 'मनु' के पारस्परिक प्रथम दर्शन का जो दोनों के हृदय पर प्रभाव पड़ा उसका विवेचन कीजिए।
६. 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' गीत में व्यक्त भावों और विचारों की व्याख्या कीजिए।
७. 'बीती विभावरी जाग री' गीत का मूल भाव अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
८. संकलित अंशों के आधार पर प्रसाद जी की काव्यगत विशेषताओं का प्रतिपादन कीजिए।
९. संकलित अंशों से मानवीकरण के दो उदाहरण चुनें और उनकी मानवीकरण के तत्व की दृष्टि से व्याख्या करें।
१०. निम्नलिखित उद्धरणों के विम्ब स्पष्ट कीजिए तथा उसमें प्रयुक्त अलंकार बताइए—
(क) कुसुम वैभव में लता समान।
(ख) चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।
(ग). खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

स्वच्छन्दतावादी भावधारा के कवियों में सर्वाधिक अनोखे व्यक्तित्व की गरिमा से मंडित कविवर निराला का जन्म बंगाल के महिषादल राज्य के मेदिनीपुर जिले में सन् १८९७ ई० में हुआ था। उनके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी उत्तर प्रदेश के बैसवाड़ा क्षेत्र के जिला उन्नाव के गढ़ाकोला ग्राम के निवासी थे और महिषादल राज्य में जाकर राजकीय सेवा में कार्य कर रहे थे। जब निराला जी छोटे ही थे तभी उनके माता-पिता का असामयिक निधन हो गया। युवा होने पर साहित्यिक अभिरुचि से सम्पन्न मनोहरा देवी से उनका विवाह हुआ। लेकिन वे भी शीघ्र ही साहित्यिक संस्कार जगाकर एक पुत्र और एक पुत्री का भार उनके ऊपर छोड़कर इस संसार से विदा हो गईं। पुत्री सरोज जब बड़ी हुई तो उन्होंने उसका विवाह किया, लेकिन थोड़े ही दिनों में उसने भी आँखें मूँद लीं। निरालाजी अपनी इस विवाहिता पुत्री के निधन से अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठे। मन के इस विक्षोभ को उन्होंने अपनी रचना 'सरोज-स्मृति' में वाणी दी।

निरालाजी ने प्रारंभ में अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए महिषादल राज्य में नौकरी की। किन्तु अपने स्वाभिमान से परिपूर्ण व्यक्तित्व के कारण उस सामन्ती वातावरण से वे सामंजस्य नहीं स्थापित कर सके। फलस्वरूप वहाँ से अलग होकर उन्होंने कलकत्ता में अपनी रुचि के अनुरूप रामकृष्ण मिशन के पत्र 'समन्वय' का सम्पादन भार सँभाला। उसके बाद 'मतवाला' के संपादकमंडल में सम्मिलित हुए। तीन वर्ष बाद लखनऊ आकर 'गंगा पुस्तकमाला' का संपादन करने लगे तथा 'सुधा' के सम्पादकीय लिखने लगे। फक्कड़ और अक्खड़ स्वभाव के कारण यहाँ भी उनकी नहीं निभी और लखनऊ छोड़कर वे इलाहाबाद में रहने लगे। आर्थिक विपन्नता भोगते हुए उन्होंने जनसाधारण के साथ अपने को एकात्म कर दिया और प्रगतिशील काव्य-रचनाओं के साथ बड़ी प्रसिद्ध गद्य रचनाएँ 'चतुरी चमार,' 'बिल्लेसुर बकरिहा' आदि प्रस्तुत कीं। निरालाजी ने स्वच्छन्दतावादी विचारधारा को लेकर भी अनेक उपन्यास 'प्रभावती' 'निरुपमा' तथा कहानियाँ लिखी थीं। १५ अक्तूबर, सन् १९६१ को प्रयाग में उनका निधन हुआ।

आधुनिक चेतना के विद्रोहशील स्वरूप की सर्वाधिक और सबसे समर्थ अभिव्यक्ति निरालाजी के काव्य में है। बंगभूमि में जन्म होने के कारण बँगला भाषा और उसके आधुनिक चेतना से ओत-प्रोत साहित्य का उन्हें भली प्रकार अध्ययन-अनुशीलन का अवसर

मिला। बंगाल के धार्मिक महापुरुषों—रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने भी उन्हें प्रभावित किया। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा का अभिनन्दन करते हुए उन्होंने अपने प्रारम्भिक रचनाकाल में 'रवीन्द्र कविता कानन' की रचना की। किन्तु उनका व्यक्तित्व स्वयं महाप्राण था, इसलिए ये सभी प्रभाव उनके भीतर पूर्णतःसमाहित हो गये। निरालाजी की मातृभाषा हिन्दी थी और उसके प्रति उनके मन में पर्याप्त अनुराग था। इसलिए 'सरस्वती' 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं के गंभीर अध्ययन के माध्यम से बंगला-भाषियों के बीच रहते हुए भी उन्होंने हिन्दी का अभ्यास किया और हिन्दी में ही साहित्य का सृजन आरम्भ किया।

निरालाजी ने अपने विद्रोहशील व्यक्तित्व को लेकर मन के प्रबल भावावेग को जब वाणी दी तो छंद के बन्धन सहज ही विच्छिन्न हो गये और मुक्त छंद का आविर्भाव हुआ। कविता का यह स्वच्छन्द स्वरुप उनकी प्रथम रचना 'जूही की कली' से ही द्रष्टव्य है। साहित्य का स्वच्छन्दतावादी संविधान निरालाजी की रचनाओं में ही सबसे सशक्त रूप में प्रकट हुआ है। स्वच्छन्दतावाद या छायावाद की मूलभूत प्रवृत्ति आत्मानुभूति के आन्तरिक स्पर्श से अलंकृत भाषा में अभिव्यक्त है, जो मुक्त छंद के अतिरिक्त कभी-कभी गीत रूप भी ग्रहण करती है। निरालाजी की स्वच्छन्दतावादी काव्यकला का प्रमुख स्वरूप उनके 'परिमल' काव्य-संग्रह की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। इसमें हमें सौन्दर्य चेतना के मानवीय, प्रकृति-परक और आध्यात्मिक सभी रूप देखने को मिल जाते हैं। अतीत के भी भावना और कल्पना से अनुरञ्जित अनेक भव्य और प्रेरणाप्रद चित्र हैं। उनका सहज संवेदनशील हृदय समाज के अनेक पीड़ितों और प्रपीड़ितों के प्रति सहानुभूति से परिपूर्ण हो उठा है। इसी अनुभूति को लेकर उनका विद्रोही मन सजग हो उठा है और बड़ी ओजस्वी शब्दावली में व्यक्ति, समाज और सम्पूर्ण देश को विप्लव के लिए आह्वान करने लगा है।

उनके व्यक्तित्व के कोमल पक्ष की सहज अभिव्यंजना 'गीतिका' में है जिसके विभिन्न गीतों में बँगला के माध्यम से गृहीत पाश्चात्य संगीत के संविधान का उपयोग है।

निरालाजी को इस प्रकार छायावादी कवियों में सबसे अधिक विद्रोहशील, सर्वाधिक उदात्त और जन-जीवन के प्रति विशेष रूप से सजग कहा जा सकता है।

बादल-राग

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर;
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर,मरु तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में
मन में, विजन—गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव घोर कठोर—
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर;
अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू बरस-बरस रसधार ;
पार ले चल तू मुझको
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव संसार !
उथल-पुथल कर हृदय—
मचा हलचल——
चल रे चल,——
मेरे पागल बादल !
धँसता दलदल,
हंसता है नद खल, खल,
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल ।
देख-देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल बेकल,
इस मरोर से ——इसी शोर से——
सघन घोर गुरु गहन रोर से

मुझे-गगन का दिखा सघन वह छोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

(परिमल से)

सन्ध्या-सुन्दरी

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे ।
तिमिरांचल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके आधार—
किन्तु जरा गंभीर,—नहीं है उनमें हास विलास ।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले काले बालों से
हृदयराज्य की रानी का वह करता है अभिषेक ।

अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बर-पथ से चली ।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-अलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा "चुप, चुप, चुप"
है गूंज रहा सब कहीं—

व्योम-मण्डल में—जगतीतल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन—जलधि प्रबल में—
क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल—अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा, 'चुप चुप, चुप'
है गूंज रहा सब कहीं—

और क्या है ? कुछ नहीं।
मदिरा की वह नदी, बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,

सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के अगणित मीठे सपने
अर्धरात्र की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

दीन

सह जाते हो
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,
हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न,

अन्तिम आशा के कानों में
स्पन्दित हम सब के प्राणों में
अपने उर की तप्त व्यथाएँ,
क्षीण कण्ठ की करुण कथाएँ
कह जाते हो
और जगत की ओर ताककर
दुःख, हृदय का क्षोभ त्यागकर
सह जाते हो !
कह जाते हो—
"यहाँ कभी मत आना,
उत्पीड़न का राज्य, दुःख ही दुःख
यहाँ है सदा उठाना,
क्रूर यहाँ पर कहलाते हैं शूर,
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर;
स्वार्थ सदा रहता परार्थ से दूर,
और वही परार्थ जो रहे
स्वार्थ ही से भरपूर;
जगत की निद्रा है, जागरण,
और जागरण, जगत का—इस संसृति का
अन्त-विराम-मरण।
अविराम घात-आघात,
आह ! उत्पात !
यही जग-जीवन के दिन-रात।
यही मेरा, इनका, उनका, सबका स्पन्दन,
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन।
यही मेरा, इनका, उनका, सबका जीवन,
दिवस का किरणोज्ज्वल उत्थान,

रात्रि की सुप्ति, पतन,
दिवस की कर्म-कुटिल तम शान्ति,
रात्रि का मोह, स्वप्न की भ्रान्ति,
सदा अशान्ति !"

(अपरा से)

प्रश्न-अभ्यास

१. 'निरालाजी के व्यक्तित्व का निरालापन उनकी काव्य-रचनाओं में पूर्णतः चरितार्थ होता है।' स्वपठित रचनाओं के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।
२. 'निरालाजी ने हिन्दी कविता में अन्तः और बाह्य दोनों को ही परिवर्तित कर दिया है' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?
३. 'निरालाजी का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व उनकी रचना 'बादल राग' में भली प्रकार प्रकट हुआ है।' इस कथन की सतर्क समीक्षा कीजिए।
४. निरालाजी की 'सन्ध्या सुन्दरी' रचना के काव्य-सौन्दर्य का निरूपण कीजिए।
५. मुक्त छंद का आप क्या तात्पर्य समझते हैं ? निरालाजी की मुक्त छंद की रचनाओं की काव्य-शोभा का विश्लेषण कीजिए।
६. "निरालाजी का व्यक्तित्व जहाँ वज्रादपि कठोर था वहाँ कुसुमादपि कोमल भी।" स्वपठित रचनाओं के आधार पर इस कथन को स्पष्ट कीजिये।
७. निम्नलिखित पंक्तियों की काव्य-शोभा को स्पष्ट करते हुए व्याख्या कीजिए—
   (क) झूम-झूम मृदु..............................निज रोर ।
   (ख) दिवसावसान का समय......................धीरे-धीरे ।
   (ग) अलसता की ....पथ से चली ।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुकुमार भावनाओं के कवि पन्त का जन्म हिमालय के सुरम्य प्रदेश कूर्मांचल (कुमायूँ) के कौसानी ग्राम में २० मई सन् १९०० को हुआ था। जन्म के कुछ घंटों बाद ही माँ का निधन हो जाने के कारण दादी ने इनका लालन-पालन किया। सात वर्ष की आयु में चौथी कक्षा में पढ़ते हुए इन्होंने सर्व प्रथम छन्द-रचना की। उच्च कक्षा में पढ़ने के लिए जब अल्मोड़ा आये तब अपना नाम गुसाइंदत्त बदलकर सुमित्रानन्दन रखा। जुलाई १९१९ में इलाहाबाद आये और म्योर सेन्ट्रल कालेज में प्रवेश किया। लेकिन १९२१ में महात्मा गाँधी के आह्वान पर कालेज छोड़ दिया। अपने कोमल स्वभाव के कारण सत्याग्रह में सम्मिलित नहीं हुए और साहित्य साधना में संलग्न हो गये। सन् १९३१ में कालाकांकर चले गये। वहाँ मार्क्सवाद का अध्ययन किया और फिर प्रयाग आकर प्रगतिशील विचारों की पत्रिका "रूपाभा" निकाली। सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से प्रेरित होकर 'लोकायन' नामक सांस्कृतिक-पीठ की योजना बनायी। उसे क्रियान्वित करने के लिए विश्व प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर से सम्पर्क स्थापित किया और फिर उनके साथ भारत-भ्रमण में निकल पड़े। इसी भ्रमण में इनका श्री अरविन्द से परिचय हुआ और उनके विचारों से विशेष प्रभावित हुए। प्रयाग लौटकर इन्होंने अरविन्द के दर्शन से प्रभावित अनेक काव्य संकलन प्रकाशित किये — यथा, 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'उत्तरा' आदि। सन् १९५० में ये आकाशवाणी से सम्बद्ध हुए और अब प्रयाग में रहकर स्वच्छन्द रूप से साहित्य सृजन कर रहे हैं। इन्हें 'कला और बूढ़ा चाँद' पर साहित्य अकादमी, 'लोकायतन' पर सोवियत और 'चिदम्बरा' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार मिले हैं।

पंतजी ने सुन्दरम् के कवि रूप में अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ किया था। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुंजन' में हम इन्हें प्रकृति के विभिन्न रूपों का अभिनन्दन करते हुए देखते हैं। इनकी सौन्दर्य-चेतना सर्वप्रथम तो हिमाच्छादित पर्वत-श्रृंखलाओं की सुषमा देखकर सजग हुई थी। उसके बाद इनका मन बादल, इन्द्र-धनुष, नक्षत्र, सरिता आदि की शोभा के दर्शन से आनन्द-विभोर हो उठा। उषा, संध्या आदि का सौन्दर्य फिर इन्हें भावमग्न कर गया। यौवन के प्रथम चरण में इन्होंने किसी किशोरी के बाल-जाल में अपने लोचनों को उलझा देने की इच्छा का भी अनुभव किया और उसके बाद तो इस विराट जगत में प्रकृति के विभिन्न सुन्दर विधानों में सुमनों और बेलों से भी अधिक मानव सुन्दर प्रतीत होने लगा।

पन्तजी की काव्य-दृष्टि के विकास में इनके काव्य-संकलन 'पल्लव' की रचना 'परिवर्तन' का विशेष महत्व है। पन्तजी अपनी इस रचना में सुन्दरम् के कवि के रूप में नहीं इस जगत् के जीवन प्रवाह के कठोर यथार्थ के द्रष्टा के रूप में प्रकट होते हैं। यह यथार्थ बोध इस जगत् की कटु वास्तविकताओं के प्रति इन्हें विद्रोहशील भी बना गया है। इनके संकलन 'युगान्त' की रचनाओं में हम इन्हें पुरानी व्यवस्था को विनष्ट करके नयी व्यवस्था लाने के लिए तत्पर देखते हैं। इसी विद्रोहशील भावना को लेकर पन्तजी कार्ल मार्क्स के साम्यवाद के प्रति आकर्षित हुए। इनके 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' संकलनों की रचनाओं में इसी विचारधारा को अभिव्यक्ति मिली है। यदा कदा इन रचनाओं में गाँधी-दर्शन का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

पन्तजी स्वभावतः आत्मनिष्ठ हैं, इसीलिए मार्क्स के बहिर्मुखी तथा भौतिकवादी दर्शन में इनका मन अधिक समय तक नहीं रमा और श्री अरविन्द के अध्यात्मवादी दर्शन से परिचय होते ही ये उसके प्रति अनुरक्त हो उठे। अरविन्द के जीवन-दर्शन में भारतीय अध्यात्म और पाश्चात्य विज्ञान का अनोखा समन्वय है। पन्तजी की रचनाओं में इस दर्शन के प्रभाव के फलस्वरूप इसी समन्वित जीवन-दृष्टि को वाणी मिली। आज भी इनकी रचनाएँ अरविन्द-दर्शन की इस दिव्य-चेतना से ओत-प्रोत हैं और नयी मानवता की प्रतिष्ठा के लिए सचेष्ट हैं।

पन्तजी की रचनाओं का भाव-जगत् जैसे-जैसे बदलता गया है, इनकी काव्य-कला में दृष्टि भी परिवर्तित होती रही है। पन्तजी की भाषा सदा ही बड़ी चित्रमयी रही है और वह बड़े ही मनोरम बिम्बों की योजना करती है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकार इन्हें विशेष प्रिय हैं, लेकिन वे सजावट के रूप में नहीं, इनकी अनुभूति से अन्तरंग होकर कविता के अंग जैसे लगते हैं। इनकी काव्य-रचनाओं को पढ़कर यह निर्णय नहीं हो पाता कि ये कवि अधिक हैं या विचारक या शिल्पी।

नौका बिहार

शान्त, स्निग्ध ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनंत नीरव भूतल !
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल !
तापस बाला गंगा निर्मल, शशिमुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल !
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर !
साड़ी सी सिकुड़न सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर !

चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर ।
सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर !
मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के पर !
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर !
कालाकाँकर का राजभवन सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन
पलकों पर वैभव-स्वप्न सघन !

नौका से उठतीं जल-हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर!

विस्फारित नयनों से निश्चल कुछ खोज रहे चल तारक दल
ज्योतित कर नभ का अंतस्तल;
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल!
सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी-सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल!
लहरों के घूंघट से झुक-झुक दशमी का शशि निज तिर्यक्-मुख
दिखलाता मुग्धा-सा रुक-रुक।

जब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार!

दो बाहों से दूरस्थ तीर धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर!
अति दूर, क्षितिज पर विटप-माल लगती भ्रू-रेखा-सी अराल,
अपलक-नभ नील-नयन विशाल;
माँ के उर पर शिशु–सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
ऊर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप,
वह कौन विहग? क्या विकल कोक, उड़ता हरने निज विरह शोक?
छाया की कोकी को विलोक!

पतवार घुमा, अब प्रतन, भार
नौका घूमी विपरीत धार।
डाँड़ों के चल करतल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार
बिखराती जल में तार-हार !
चाँदी के साँपों-सी रलमल नाचती रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं-सी खिच तरल—सरल !
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ-सौ शशि, सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल में फनिल ;
अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले-ले सहज थाह।
हम बढ़े घाट को सहोत्साह !

ज्यों-ज्यों लगती नाव पार
उर में आलोकित शत विचार।
इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम !
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास !
हे जग-जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन—नौका—विहार !
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान !

(गुंजन से)

परिवर्तन

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगंत छवि जाल,
ज्योति चुंबित जगती का भाल ?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार ?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार !
प्रसूनों के शाश्वत शृंगार,
(स्वर्ण भृंगों के गंध विहार)
गूँज उठते थे बारंबार
सृष्टि के प्रथमोद्‌गार !
नग्न सुन्दरता थी सुकुमार
ऋद्धि औ' सिद्धि अपार !
अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात ?
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण भ्रूपात ।

(२)

हाय ! सब मिथ्या बात !
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस !
वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,–जीवन है भार !

आज पावस नद के उद्गार
काल के बनते चिह्न कराल,
प्रात का सोने का संसार,
जला देती संध्या की ज्वाल !

अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल,
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार,
गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार !

(३)

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात !
चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अंधकार, अज्ञात !

शिशिर-सा झर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल !
प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर
अधर जाते अधरों को भूल !

मृदुल होंठों का हिमजल हास
उड़ा जाता निःश्वास समीर;
सरल भौंहों का शरदाकाश
घेर लेते घन, घिर गंभीर !

शून्य साँसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर मधुर संयोग ;
मिलन के पल केवल दो चार,
विरह के कल्प अपार !

अरे, वे अपलक चार नयन
आठ आँसू रोते निरुपाय,
उठें रोओं के आलिंगन
कसक उठते काँटों - से हाय !

(४)

किसी को सोने के सुख साज
मिल गया यदि ऋण भी कुछ आज,
चुका लेता दुख कल ही ब्याज
काल को नहीं किसी की लाज!

विपुल मणि रत्नों का छविजाल,
इंद्रधनु की सी छटा विशाल—
विभव की विद्युत ज्वाल
चमक, छिप जाती है तत्काल;

मोतियां जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार !

(५)

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;
अभी उत्सव औ' हास हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु उच्छवास!

अचिरता देख जगत, की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश;

सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडुगन !

(६)

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !

अहे वासुकि सहस्रफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर!
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीतफूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल
दिङ्मंडल !

(पल्लव से)

गीत विहग

मैं नव मानवता का संदेश सुनाता,
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता,
मैं मन:क्षितिज के पार मौन शाश्वत की
प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह बन आता !
युग के खँडहर पर डाल सुनहली छाया,
मैं नव प्रभात के नभ में उठ मुसकाता,
जीवन पतझर में जन मन की डालों पर
मैं नव मधु के ज्वाला पल्लव सुलगाता !

आवेशों से उद्वेलित जन सागर में
नव स्वप्नों के शिखरों का ज्वार उठाता,
जब शिशिर क्रांत, वन-रोदन करता भू-मन,
युग पिक बन प्राणों का पावक बरसाता !
मिट्टी के पैरों से भव-क्लांत जनों को
स्वप्नों के चरणों पर चलना सिखलाता,
तापों की छाया से कलुषित अंतर को
उन्मुक्त प्रकृति का शोभा वक्ष दिखाता !

जीवन मन के भेदों में सोई मति को
मैं आत्म एकता में अनिमेष जगाता,
तम पंगु, बहिर्मुख जग में बिखरे मन को
मैं अंतर सोपानों पर ऊर्ध्व चढ़ाता !
आदर्शों के मरु जल से दग्ध मृगों को
मैं स्वर्गंगा स्मित अंतर्पथ बतलाता,
जन जन को नव मानवता में जाग्रत् कर
मैं मुक्त कंठ जीवन रण शंख बजाता !

मैं गीत विहग, निज मर्त्य नीड़ से उड़ कर
चेतना गगन में मन के पर फैलाता,
मैं अपने अंतर का प्रकाश बरसा कर
जीवन के तम को स्वर्णिम कर नहलाता !
मैं स्वदूँतों को बाँध मनोभावों में
जन जीवन का नित उनको अंग बनाता,
मैं मानव प्रेमी नव भू स्वर्ग बसा कर
जन धरणी पर देवों का विभव लुटाता !

मैं जन्म मरण के द्वारों से बाहर कर
मानव को उसका अमरासन दे जाता,
मैं दिव्य चेतना का संदेश सुनाता,
स्वाधीन भूमि का नव्य जागरण गाता !

(उत्तरा से)

बापू के प्रति

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण ! हे चिर नवीन !
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन,
आधार अमर, होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन ।

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त-अस्थि—
निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य ! तुम्हारा निःस्व त्याग
है विश्व भोग का वर साधन;
इस भस्म-काम तन की रज से
जग पूर्ण-काम नव जगजीवन,
बीनेगा सत्य-अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन !

सुख भोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य-खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज !
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज !

पशु-बल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम-युक्ति,
वर श्रम-प्रसूति से की कृतार्थ
तुमने विचार परिणीत उक्ति
विश्वानुरक्त हे अनासक्त,
सर्वस्व-त्याग को बना मुक्ति !

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग-युग का विषय-जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद।
रंग रंग के खद्दर के सूत्रों में,
नव जीवन आशा, स्पृहाह्लाद,
मानवी कला के सूत्रधार!
हर लिया यन्त्र कौशल प्रवाद!

साम्राज्यवाद था कंस, बन्दिनी
मानवता, पशु–बलाऽक्रान्त,
शृंखला-दासता, प्रहरी बहु
निर्मम शासन–पद शक्ति–भ्रान्त,
कारागृह में दे दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त, कान्त,
जन–शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत, पद–प्रणत शान्त!

कारा थी संस्कृति विगत, भित्ति
बहु धर्म-जाति–गति रूप–नाम,
बन्दी जग–जीवन, भू विभक्त
विज्ञान–मूढ़, जन प्रकृति-काम;
आये तुम मुक्त पुरुष, कहने–
मिथ्या जड़ बन्धन, सत्य राम,
नानृतं जयति सत्यं मा भैः,
जय ज्ञान-ज्योति, तुमको प्रणाम!

(युगान्त से)

प्रश्न अभ्यास

१. "पन्तजी की रचनाओं में प्रकृति के अनेक रूपों का वर्णन दृष्टिगत होता है।" इस कथन की युक्ति–युक्त समीक्षा कीजिए।
२. पंतजी की रचनाओं के आधार पर छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।
३. पंतजी की रचनाओं में प्रगतिवाद की जो प्रवृत्तियां प्रकट हुई हैं, उन्हें उदाहरणों के साथ प्रस्तुत कीजिए।
४. पंतजी की "नौका–विहार' शीर्षक रचना के काव्य-सौन्दर्य का निरूपण कीजिए।
५. पंतजी ने अपनी रचना 'नौका-विहार' के माध्यम से जो संदेश दिया है उसे अपने शब्दों में समझा कर लिखिये।
६. पंतजी की 'परिवर्तन' शीर्षक काव्य रचना के कलात्मक-सौष्ठव को स्पष्ट करते हुए उसका संदेश लिखिए।
७. 'गीत विहग' का संदेश अपने शब्दों में लिखिए।
८. पंतजी ने बापू के महामहिम व्यक्तित्व का अभिनन्दन करते हुए जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें अपने शब्दों में लिखिए।
९. निम्नलिखित अवतरणों की काव्य-शोभा को स्पष्ट करते हुए व्याख्या कीजिए—
   (क) विस्फारित नयनों......................लुक-छिप पल-पल।
   (ख) हे जगजीवन......................अमरत्व दान।
   (ग) अहे निष्ठुर परिवर्तन............उत्थान-पतन।
   (घ) मैं गीत विहग...................... नहलाता।
   (ङ) सुख भोग खोजने..............मानवता का सरोज।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म फरुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में १९०७ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में तथा बी० ए०, एम० ए० की शिक्षा प्रयाग में हुई। ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति हैं। विद्यार्थी जीवन में ही ये प्राय:राष्ट्रीय,औरसामाजिक जागरण की रचनायें करने लगी थीं। मैट्रिक पास करने से पहले ही दार्शनिक चेतना से सम्पन्न कविताएं इन्होंने लिखीं। प्रयागसे लगे हुए गाँवों में जाकर वहाँ के निवासियों के रहन-सहन को समीपता से देखने तथा उसे सुधारने का प्रयास उन्होंने किया। अपने सम्पर्कमें आने वाले सामान्य जनों,नौकरों आदिके प्रति असीम करुणा और सहानुभूति इन्होंने दिखायी। पर्वतों की यात्रा इनका प्रिय व्यसन रहा। प्राकृतिक सौंदर्य और मानवीय विषमता, कुरूपता, दरिद्रता आदि देखने का अवसर ऐसी ही यात्राओं में इनको प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विधान परिषद् की सदस्यता इन्हें प्रदान की गयीतथा भारत सरकार से पद्मभूषण का अलंकरण इन्हें प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय संकट के दिनों में इन्होंने व्यापक मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत साहित्यकार की भूमिका निभायी।

महादेवी वर्मा का नाम छायावादी काव्यधारा के उन कवियों में आता है, जिन्होंने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, नैतिकता, पौराणिकता और उपदेशात्मकता को छोड़कर भावुक मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों, उसके स्पन्दनों को मधुर गीतों और संगीतात्मक लय के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। अपनी अन्तर्मुखी मनोवृत्ति, नारी सुलभ गहरी भावुकता के कारण ये वेदनाके गीले स्वरों की सम्राज्ञी हुई। बाह्य प्रकृति को विराट रूप में प्रस्तुत करने वाली कवयित्री छायावादी प्रवृत्ति सम्पन्न हैं और अनन्त रूप में ये रहस्यवादी भावनाओं की आधुनिक युग की सर्वाधिक मधुर गायिका हैं।

संयोगकालीन क्षणों की मादक स्मृति जैसे इन्हें विभोर किये रहती है,वियोग-कालीन अवसाद और निराशा में भी वे जीवन की सार्थकता ही नहीं अपितु रस अनुभव करती हैं। विराट और रहस्यमयी प्रकृति का कण-कण कभी तो इन्हें प्रियतम का परिचय देने वाला लगता है; कभी उसका दूत बनकर सन्देश लाता है, कभी उनकी सुप्त, मधुर और पीड़ामयी स्मृतियों को जगा देता है। महादेवीजी का काव्य-क्षेत्र सम्भवत: छायावादी कवियों में सर्वाधिक सीमित तो है लेकिन सबसे अधिक गहराई भी उसी में है। प्रणयी मानस को भाव विभोर करने वाली जिन अनुभूतियों को कवयित्री ने गीतों में ढाला है, वे अभूतपूर्व हैं; हृदय को मथ देने वाली जितनी हृदय विदारक पीड़ा की लघु-विराट छवियाँ कवयित्री द्वारा चित्रित की गई हैं, वे अद्वितीय ही मानी जायेंगी।

सूक्ष्म संवेदनशीलता, परिष्कृत सौन्दर्य रुचि, समृद्ध कल्पना शक्ति और अभूतपूर्व चित्रात्मकता के माध्यम से प्रणयी मन की जो स्वर लहरियाँ गीतों में व्यक्त हुई हैं, आधुनिक क्या सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में उनकी तुलना शायद ही किसी से की जा सके। शिक्षित और सुसंस्कृत पाठक के मर्म को छू लेने की जितनी सामर्थ्य महादेवी वर्मा के गीतों में है उतनी शायद ही किसी छायावादी कवि के गीतों में हो।

खड़ी बोली की कर्कशता को, छायावादी कवियों के कुसुमकोमल, भावुक और कल्पनाशील व्यक्तित्व ने समाप्त कर उसे ब्रजभाषा जैसे माधुर्य से सम्पन्न किया था। कवयित्री ने अपने व्यक्तित्व की सहज करुणा, संवेदनशीलता और संगीत बोध के द्वारा उसमें अभूतपूर्व माधुर्य तथा मानव और प्रकृति जगत के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्पन्दनों को अभिव्यक्त करने की क्षमता भर दी। तत्सम शब्दावली गीतों को एक गरिमा से अभिभूत कर देती है। कलापूर्ण चित्रात्मकता उनके गीत शिल्प का एक प्रमुख अंग है। अलंकार और लक्षणा तथा व्यंजना का चमत्कार इनके काव्य में प्राप्त होता है। प्रणयी जीवन के हास-अश्रु की अभिव्यक्ति इनके काव्य की सीमा-रेखा मानी जा सकती है। सामयिक जीवन की प्रतिछवि का नितान्त अभाव वास्तव में बड़ी खटकने वाली चीज है। कठिनता से ही दो-तीन गीतों में बाह्य जगत की छाया दिखायी पड़ती है। आश्चर्य होता है यह देखकर कि कवयित्री की गद्यरचनाओं तथा सामाजिक जीवन में जो समृद्ध चेतना पर्याप्त मात्रा में मिलती है, उसकी कोई छाया-रेखा भी गीतों में खोजे नहीं मिलती। व्यक्तित्व का ऐसा कठोर विभाजन अभूतपूर्व ही है। फिर भी हिन्दी गीतों की मधुरतम रचयित्री के रूप में महादेवी वर्मा अद्वितीय गौरव से मंडित हैं।

गीत

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत्-शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ जाना !
जाग तुझको दूर जाना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पन्थ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?
सो गई आँधी मलय की बात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना ?
जाग तुझको दूर जाना !

कह न ठंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी;
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !
जाग तुझको दूर जाना !
(सांध्यगीत से)

(२)

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन;

और होंगे नयन सूखे,
तिल बुझे औ' पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला !

अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;

दुखव्रती निर्माण उन्मद
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण बेला !

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोयी निशानी,

आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ'
चिनगारियों का एक मेला !

हास का मधु दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो !

ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना-जल, स्वप्न-शतदल,
जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला !

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

(दीपशिखा से)

(३)

मैं नीरभरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग संगीतभरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,

नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली !

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,

रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नव जीवन-अंकुर बन निकली !

Imp पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

(सांध्य गीत से)

-8-77

(४)

सजल है कितना सवेरा !

गहन तम में जो कथा इसकी न भूला,
अश्रु उस नभ के, चढ़ा शिर फूल फूला,
झूम झुक-झुक कह रहा हर श्वास तेरा !

राख से अंगार—तारे झर चले हैं,
धूप बन्दी रँग के निर्झर खले हैं,
खोलता है पंख रूपों में अँधेरा।

कल्पना निज देखकर साकार होते,
और उसमें प्राण का संचार होते,
सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा।

अलस पलकों से पता अपना मिटा कर,
मृदुल तिनकों में व्यथा अपनी छिपाकर,
नयन छोड़े स्वप्न ने, खग ने बसेरा !

ले उषा ने किरण—अक्षत हास—रोली,
रात अंकों से पराजय—राख धो ली,
राग ने फिर साँस का संसार घेरा।

सजल है कितना सवेरा !

(दीपशिखा से)

प्रश्न-अभ्यास

१. महादेवीजी को आधुनिक मीरा क्यों कहा जाता है—स्वपठित रचनाओं के आधार पर सतर्क उत्तर दीजिए।
२. "महादेवीजी ने लौकिक विरह को नहीं आध्यात्मिक विरह-वेदना को वाणी दी है।" इस कथन की युक्ति-युक्त समीक्षा कीजिए।
३. "महादेवीजी की रचनाओं में रहस्यवाद को सफल अभिव्यक्ति मिली है।" इस कथन को समुचित उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिए।
४. कबीर और जायसी के रहस्यवाद से महादेवीजी के रहस्यवाद की तुलना कीजिए।
५. "महादेवीजी की चित्र विधायिनी कल्पना का परिचय उनके काव्य बिम्बों में भली प्रकार मिलता है।" स्वपठित गीतों के आधार पर इस कथन को समझाइए।
६. गीति-काव्य किसे कहते हैं? महादेवीजी की रचनाओं में गीति-काव्य के वे लक्षण कहाँ तक चरितार्थ हुए हैं?
७. महादेवीजी ने अपने गीत 'चिर सजग आंखें उनींदीं' के माध्यम से हमें जो संदेश देना चाहा है उसे अपने शब्दों में लिखिए।
८. 'मैं नीरभरी दुख की बदली' गीत का भावार्थ लिखिए।
९. निम्नलिखित अवतरणों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट करते हुए व्याख्या लिखिए—
निम्नलिखित अवतरणों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट करते हुए व्याख्या लिखिए—
(क) चिर सजग आंखें उनींदीं आज कैसा व्यस्त बाना!
(ख) जाग तुझको दूर जाना!
(ग) मैं नीर भरी............निर्झरिणी मचली!
(घ) ले उषा ने............सबेरा!

रामधारी सिंह 'दिनकर'

राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया गांव में ३० सितम्बर सन् १९०८ को हुआ था। पटना कालेज से उन्होंने सन् १९३३ में बी० ए० किया और फिर एक स्कूल में अध्यापक हो गये। उसके बाद सीतामढ़ी में सब-रजिट्रार बने। द्वितीय महायुद्ध में राजकीय प्रचार विभाग में आ गये। उन दिनों भारत में अंग्रेजों का शासन था और अंग्रेजी सरकार का कोई भी कर्मचारी उस सरकार के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता था। तो भी 'दिनकर' ने राजकीय सेवा के काल में भी स्वदेशानुराग की भावना से ओत-प्रोत, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति की भावना से परिपूर्ण और क्रांति की भावना जगाने वाली रचनाएँ लिखीं।

सन् १९५० में उन्हें मुजफ्फरपुर के स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिन्दी विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। सन् १९५२ में उन्हें राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया और वे दिल्ली आकर रहने लगे। 'दिनकर' की काव्य-साधना निरन्तर जारी रही। सन् १९६१ में उनका बहुचर्चित काव्य 'उर्वशी' प्रकाशित हुआ और इसी रचना पर उन्हें सन् १९७२ में एक लाख रुपये का ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। सन् १९६४ में उन्हें केन्द्रीय सरकार की हिन्दी समिति का परामर्शदाता बनाया गया। इस पद से अवकाश ग्रहण करने के अनन्तर वे पटना में रहने लगे। उनके जवान बेटे की मृत्यु ने इस ओजस्वी व्यक्तित्व को सहसा खंडित कर दिया और तिरुपति के देवविग्रह को अपनी व्यथा-कथा समर्पित करते हुए 'दिनकर' २४ अप्रैल सन् १९७४ को अस्त हो गये।

'दिनकर' प्रारंभ से ही लोक के प्रति निष्ठावान, सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग और जनसाधारण के प्रति समर्पित कवि रहे हैं। तभी तो उन्होंने छायावादी कवियों की भांति काव्य-रचना न करके 'रेणुका' का आलोक छिटकाया। फिर 'रसवन्ती' के प्रणयी गायक के रूप में उनका कुसुम कोमल व्यक्तित्व प्रकट हुआ। लेकिन देश की विषम परिस्थितियों की पुकार ने कवि को भावुकता, कल्पना और स्वप्न के रंगीन लोक से खींचकर ऊबड़-खाबड़ धरती पर लाकर खड़ा कर दिया तथा शोषण की चक्की में पिसते हुए जनसाधारण और उनके भूखे-नंगे बच्चों का प्रबल समर्थक बना दिया; फिर देश के मुक्ति राग के ओजस्वी गायक के रूप में उनका व्यक्तित्व निखर उठा।

'दिनकर' के विद्रोहशील व्यक्तित्व को अपने देश के पौराणिक आख्यानों में जो असंगतियां दिखायी दीं उन्हें मिटाने के लिए उन्होंने 'कुरुक्षेत्र', रश्मिरथी' जैसे कथाकाव्यों की रचना की। पहली रचना कुरुक्षेत्र तो वस्तुतः कथाकाव्य नहीं वरन विचार-काव्य

है क्योंकि उसमें हिंसा और अहिंसा की विचारधाराओं का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। 'रश्मिरथी' में सूतपुत्र के रूप में प्रसिद्ध वीर कर्ण का आख्यान है।

जागरित पुरुषार्थ के कवि 'दिनकर' शान्तिप्रियता और अहिंसा की आड़ में फैलने वाली निर्वीर्यता और अकर्मण्यता को व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए घातक मानते हैं। उनके व्यक्तित्व का यही प्रखर स्वरूप चीनी आक्रमण के समय प्रज्ज्वलित हो उठा था और उन्होंने देशवासियों को ललकारते हुए 'परशुराम की प्रतिज्ञा' शीर्षक रचना उपस्थित की थी।

'दिनकर' की काव्य-प्रतिभा का चरमोत्कर्ष उनके नाटकीय कथाकाव्य 'उर्वशी' में दृष्टिगत होता है। उनका इस रचना का कथा-प्रसंग तो कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशी से लिया गया है लेकिन उसका प्रस्तुतीकरण आधुनिक बोध से अनुप्राणित है। पुरूरवा का स्नेह-निवेदन मुक्त छन्द के संविधान में आज उन्मुक्त चेतना को बड़े सशक्त रूप में उपस्थित करता है। उर्वशी ने जो उत्तर दिया है वह यद्यपि भावना की भाषा में है तथापि उसमें आज की जागरूक बुद्धि की नारी का स्वर मुखर है।

'दिनकर' ने अपनी रचनाओं में अपनी विद्रोहशील मनोवृत्ति और सौन्दर्यचेतना को वाणी देने के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रवृत्तियों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। उनके 'नीम के पत्ते' संकलन में आज के राजनेताओं पर बड़े तीखे व्यंग हैं। 'आत्मा की आँखें' में अंग्रेजी की कुछ नयी प्रयोगशील कविताओं के अनुवाद हैं। इस प्रयास के अनन्तर दिनकर जी ने स्वयं भी इस दिशा में कुछ प्रयोग किये। व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन की समस्याओं तथा आपदाओं के कारण एवं दुर्दैव के कठोरतम आघात युवा पुत्र की मृत्यु के कारण उनका ओजस्वी, वर्चस्वी और मनस्वी व्यक्तित्व छोटी-छोटी अतुकान्त कविताओं में टूट-टूट कर, पिघल-पिघल कर बह निकला। उनका अन्तिम काव्य-संकलन 'हारे को हरिनाम' उनकी ऐसी ही करुण, निराश, दीन, आतुर आत्मा की विनयपत्रिका है।

30-8-77

पुरूरवा

कौन है अंकुश, इसे मैं भी नहीं पहचानता हूँ।
पर, सरोवर के किनारे कंठ में जो जल रही है,
उस तृषा, उस वेदना को जानता हूँ।

सिंधु-सा उद्दाम, अपरंपार मेरा बल कहाँ है ?
गूँजता जिस शक्ति का सर्वत्र जयजयकार,
उस अटल संकल्प का संबल कहाँ है ?

यह शिला-सा वक्ष, ये चट्टान—सी मेरी भुजाएँ,
सूर्य के आलोक से दीपित, समुन्नत भाल,
मेरे प्राण का सागर अगम, उत्ताल, उच्छल है।

सामने टिकते नहीं वनराज, पर्वत डोलते हैं,
काँपता है कुंडली मारे समय का व्याल,
मेरी बाँह में मारुत, गरुड़, गजराज का बल है।

मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं,
उर्वशी ! अपने समय का सूर्य हूँ मैं।
अंध तम के भाल पर पावक जलाता हूँ,
बादलों के सीस पर स्यन्दन चलाता हूँ।

पर, न जानें, बात क्या है !
इन्द्र का आयुध पुरुष जो झेल सकता है,
सिंह से बाहें मिला कर खेल सकता है,
फूल के आगे वही असहाय हो जाता,
शक्ति के रहते हुए निरुपाय हो जाता।

विद्ध हो जाता सहज बंकिम नयन के बाण से,
जीत लेती रूपसी नारी उसे मुसकान से।

उर्वशी

पर, क्या बोलूँ ? क्या कहूँ ?
भ्रान्ति यह देह-भाव ।
मैं मनोदेश की वायु व्यग्र, व्याकुल, चंचल;
अवचेत प्राण की प्रभा, चेतना के जल में
मैं रूप-रंग-रस-गन्ध-पूर्ण साकार कमल ।

मैं नहीं सिन्धु की सुता ;
तलातल-अतल-वितल–पाताल छोड़,
नीले समुद्र को फोड़ शुभ्र, झलमल फेनांशुक में प्रदीप्त
नाचती ऊर्मियों के सिर पर
मैं नहीं महातल से निकली ।

मैं नहीं गगन की लता
तारकों में पुलकित फूलती हुई,
मैं नहीं व्योमपुर की बाला,
विधु की तनया, चन्द्रिका-संग,
पूर्णिमा-सिन्धु की परमोज्ज्वल आभा-तरंग,
मैं नहीं किरण के तारों पर झूलती हुई भू पर उतरी ।

मैं नाम–गोत्र से रहित पुष्प,
अम्बर में उड़ती हुई मुक्त आनन्द–शिखा
इतिवृत्त हीन,
सौन्दर्य-चेतना की तरंग ;
सुर–नर-किन्नर–गन्धर्व नहीं,
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्वनर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत।

जन-जन के मन की मधुर वह्नि प्रत्येक हृदय की उजियाली,
नारी की मैं कल्पना चरम नर के मन में बसने वाली।
विषधर के फण पर अमृतवर्ति;
उद्धत, अदम्य, बर्बर बल पर
रूपांकुश, क्षीण मृणाल-तार।

मेरे सम्मुख नत हो रहते गजराज मत्त;
केसरी, शरभ, शार्दूल भूल निज हिंस्र भाव
गृह-मृग-समान निर्विष, अहिंस्र बनकर जीते।

मेरी भ्रू-स्मिति को देख चकित, विस्मित, विभोर
शूरमा निमिष खोले अवाक् रह जाते हैं;
श्लथ हो जाता स्वयमेव शिंजिनी का कसाव,
संत्रस्त करों से धनुष-बाण गिर जाते हैं।

कामना-वह्नि की शिखा मुक्त मैं अनवरुद्ध,
मैं अप्रतिहत, मैं दुर्निवार;
मैं सदा घूमती फिरती हूँ
पवनान्दोलित वारिद-तरंग पर समासीन
नीहार-आवरण में अम्बर के आर-पार;
उड़ते मेघों की दौड़ बाहुओं में भरती,
स्वप्नों की प्रतिमाओं का आलिंगन करती।

विस्तीर्ण सिन्धु के बीच शून्य, एकान्त द्वीप,
यह मेरा उर।

देवालय में देवता नहीं, केवल मैं हूँ।
मेरी प्रतिमा को घेर उठ रही अगुरु-गन्ध,
बज रहा अर्चना में मेरी मेरा नूपुर।

भू-नभ का सब संगीत नाद मेरे निस्सीम प्रणय का है,
सारी कविता जयगान एक मेरी त्रयलोक-विजय का है।
(उर्वशी से)

अभिनव मनुष्य

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।
भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,
बह रही असहाय नर की भावना निष्काम।

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर, या कि हो भगवान,
बुद्ध हों कि अशोक, गाँधी हों कि ईसु महान ;
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान,
दग्ध कर पर को, स्वयं भी भोगता दुख-दाह,
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

आज की दुनिया विचित्र, नवीन ;
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।
हैं बँधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता-उतरता है पवन का ताप।
हैं नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लाँघ सकता नर सरित, गिरि, सिन्धु एक समान।

शीश पर आदेश कर अवधार्य,
प्रकृति के सब तत्व करते हैं मनुज के कार्य।
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,
और करता शब्दगुण अम्बर वहन संदेश।

नव्य नर की मुष्टि में विकराल,
हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल
यह मनुज,
जिसका गगन में जा रहा है यान,
काँपते जिसके करों को देखकर परमाणु ।

खोलकर अपना हृदयगिरि, सिन्धु, भू, आकाश,
हैं सुना जिसको चुके निज गुह्यतक इतिहास ।
खुल गये परदे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय ?
किन्तु नर को चाहिए नित विघ्न कुछ दुर्जेय;
सोचने को और करने को नया संघर्ष;
नव्य जय का क्षेत्र, पाने को नया उत्कर्ष ।

पर, धरा सुपरीक्षिता, विश्लिष्ट स्वादविहीन,
यह पढ़ी पोथी न दे सकती प्रवेग नवीन ।
एक लघु हस्तामलक यह भूमि-मंडल गोल,
मानवों ने पढ़ लिए सब पृष्ठ जिसके खोल ।

किन्तु, नर-प्रज्ञा सदा गतिशालिनी, उद्दाम,
ले नहीं सकती कहीं रुक एक पल विश्राम ।
यह परीक्षित भूमि, यह पोथी पठित, प्राचीन,
सोचने को दे उसे अब बात कौन नवीन ?
यह लघुग्रह भूमिमण्डल, व्योम यह संकीर्ण,
चाहिए नर को नया कुछ और जग विस्तीर्ण ।

यह मनुज ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश ।
यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम,
कर रहे जिसको चराचर भक्तियुक्त प्रणाम ॥

यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार,
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।
'व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय',
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।
श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत,
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो, बस, वही ज्ञानी, वही विद्वान्,
और मानव भी वही।

सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी अज्ञान;
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।

(कुरुक्षेत्र से)

चाँद और कवि

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है!
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता, न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते;
और लाखों बार तुझ-से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न ? है वह बुलबुला जल का,
आज उठता और कल फिर फूट जाता है;
किन्तु, फिर भी धन्य; ठहरा आदमी ही तो ?
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला, किन्तु, मेरी रागिनी बोला,
देख फिर से, चाँद ! मुझको जानता है तू ?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं ? है यही पानी ?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू ?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ;
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह, दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है;
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
"रोज़ ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे;
रोकिये, जैसे बने, इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे"।

(सामधेनी से)

प्रश्न-अभ्यास

१. संकलित अंश के आधार पर पुरूरवा के पुरुषार्थ का विवेचन कीजिए।
२. उर्वशी ने अपना जो परिचय दिया है उसको अपने शब्दों में लिखिए।
३. कामायनी (श्रद्धा) और उर्वशी के सौंदर्य-निरूपण की तुलना कीजिए।
४. अभिनव मनुष्य की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
५. कवि ने अभिनव मनुष्य को किस लिए सावधान किया है ?
६. चाँद ने कवि से मनुष्य के सम्बन्ध में क्या विचार व्यक्त किये ?
७. कवि की रागिनी ने चाँद को क्या उत्तर दिया ?
८. 'अभिनव मनुष्य' तथा 'चाँद और कवि' में व्यंजित 'दिनकर' के विचारों की तुलना कीजिए।
९. 'दिनकर' की काव्यगत विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
१०. भाव-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए—
(क) कौन है अंकुश..........जानता हूँ।
(ख) विद्ध हो.................मुस्कान से।
(ग) जन जन के..............बसने वाली।
(घ) सावधान मनुष्य.........बड़ी यह धार।
(ङ) मनु, नहीं..............तलवार होती है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

2.9.77

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म मार्च १६११ में हुआ था। इनका बचपन अपने विद्वान पिता के साथ कश्मीर, बिहार और मद्रास में व्यतीत हुआ था। इन्होंने मद्रास और लाहौर में शिक्षा प्राप्त की। बी० एस-सी० करने के बाद एम०ए० (अंग्रेजी) की पढ़ाई के समय क्रांतिकारी आन्दोलन में फरार हुए और १६३० में गिरफ्तार हुए। चार वर्ष जेल में और दो वर्ष नजरबन्द रहना पड़ा। किसान आन्दोलन में भाग लिया। सैनिक विशाल भारत, प्रतीक और अंग्रेजी त्रैमासिक 'वाक्' का सम्पादन किया। कुछ वर्ष आकाशवाणी में रहे और सन् १६४३ से ४६ तक सेना में रहे। घुमक्कड़ प्रकृति के वशीभूत होकर अनेक बार अनेक देशों की यात्राएँ कीं। समाचार सप्ताहिक 'दिनमान' का सम्पादन किया। आजकल 'नया प्रतीक' का सम्पादन कर रहे हैं।

अज्ञेयजी ने जब लिखना आरम्भ किया तब प्रगतिवादी आन्दोलन जोरों पर था। कविता छायावादी प्रभाव से मुक्त होकर अंतर्मुखी प्रवृत्ति छोड़ कर बाहरी जगत की ओर ध्यान देने लगी थी। इस प्रगतिवादी काव्य का ही एक रूप प्रयोगवादीकाव्यान्दोलन में प्रतिफलित हुआ। इसका प्रवर्तन 'तार सप्तक' के द्वारा अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ने किया। इस काव्य-संकलन में सात प्रयोगवादी कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। 'तार सप्तक' की भूमिका इस नये आन्दोलन का घोषणापत्र हुई। अज्ञेय अपने सूक्ष्म कलात्मक बोध,व्यापक जीवन-अनुभूति और समृद्ध-कल्पना शक्ति तथा सहज लेकिन संकेतमयी अभिव्यंजना के द्वारा परिचित भावनाओं के नूतन और अनछुए रूपों को उजागर किया। परम्परागत घिसी-पिटी राजनीति, सुधार और क्रान्ति के दुहराये गये नारों के स्थान पर मानवीय और प्राकृतिक जगत के स्पन्दनों को बोलचाल की भाषा में वार्तालाप एवं स्वागत शैली में व्यक्त किया। परम्परागत आलंकारिकता की और लाक्षणिकता के आतंक से काव्यशिल्प को मुक्त कर नवीन काव्यधारा का प्रवर्तन किया। निजी अनुभूति को अपने बनाये हुए शिल्प के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न अज्ञेय ने किया, जो सहज ही विवाद का कारण बन गया और आज काव्य क्षेत्र में उनके स्थापित होने पर भी मतभेद से मुक्त नहीं हो सका है।

मानव नियति और प्राकृतिक सौन्दर्य के घिसे-पिटे वक्तव्यों और मढ़ी-मढ़ाई शैली से हटकर अज्ञेय ने अपने अन्तर्गत को वाणी देकर बड़े साहस का काम किया। इन्होंने समष्टि

को महत्त्वपूर्ण अवश्य माना किन्तु साथ ही व्यक्ति की निजता या महत्ता को अखंडित रखा। व्यक्ति मन की गरिमा को इन्होंने फिर से स्थापित किया और उसके विकास को अनदेखा करने से जो गम्भीर संकट उपस्थित होता जा रहा था उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। कवि, कथाकार, निबंधकार, समीक्षक, घुमक्कड़, गंभीर अध्येता, नाटककार, पत्रकार तथा फोटोग्राफर होने के कारण अज्ञेय के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में प्राप्त होती है। इनका विचार है कि बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति ही मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं है, अपितु उसके अन्तःकरण का विकास और समृद्धि भी उतनी ही आवश्यक है। असंस्कृत या अविकसित मानस का व्यक्ति भौतिक सम्पन्नता से मुक्त होने पर भी अपने लिए तथा समाज के लिए समस्या बना ही रहता है। इसीलिए केवल शरीर की आवश्यकता की पूर्ति पर्याप्त नहीं है। अज्ञेयजी निरन्तर व्यक्ति मन के विकास की यात्रा को महत्त्वपूर्ण मानकर चलते रहे हैं।

अज्ञेय के अतुकान्त छंदों में सजग शब्द-प्रयोग भाव और विचार की गहराई को खोलता हुआ सा लगता है। गंभीर प्रकृति का शिक्षित और सुसंस्कृत पाठक ही इनके काव्य को ग्रहण कर पाता है। अज्ञेय निरन्तर चिन्तन और मनन के कवि रहे हैं। बाह्य जगत से उदबुद्ध भावों एवं विचारों को वे अपने मानव में रचने-पचने देते हैं और अपने व्यक्तित्व का सहज अंश बन जाने पर ही वे उन्हें अभिव्यक्ति देते हैं।

अज्ञेय की प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं—

आँगन के पार द्वार, अरी ओ करुणा प्रभामय, हरी घास पर क्षण भर, इन्द्र धनु रौंदे हुए ये, पूर्वा, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, बावरा अहेरी, इत्यलम चिन्ता, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ आदि।

मैंने आहुति बनकर देखा—

मैं कब कहता हूँ जग मेरी दुर्धर गति के अनुकूल बने,
मैं कब कहता हूँ जीवन-मरु नंदन-कानन का फूल बने ?
काँटा कठोर है, तीखा है, उसमें उस की मर्यादा है,
मैं कब कहता हूँ वह घटकर प्रांतर का ओछा फूल बने ?
मैं कब कहता हूँ मुझे युद्ध में कहीं न तीखी चोट मिले ?
मैं कब कहता हूँ प्यार करूँ तो मुझे प्राप्ति की ओट मिले ?
मैं कब कहता हूँ विजय करूँ—मेरा ऊँचा प्रासाद बने ?
या पात्र जगत की श्रद्धा की मेरी धुँधली-सी याद बने ?
पथ मेरा रहे प्रशस्त सदा क्यों विकल करे यह चाह मुझे ?
नेतृत्व न मेरा छिन जावे क्यों इसकी हो परवाह मुझे ?
मैं प्रस्तुत हूँ चाहे मेरी मिट्टी जनपद की धूल बने—
फिर उस धूली का कण-कण भी मेरा गति-रोधक शूल बने !
अपने जीवन का रस देकर जिसको यत्नों से पाला है—
क्या वह केवल अवसाद-मलिन झरते आँसू की माला है ?
वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव-रस का कटु प्याला है—
वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहन-कारी हाला है
मैंने विदग्ध हो जान लिया, अन्तिम रहस्य पहचान लिया—
मैंने आहुति बन कर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है
मैं कहता हूँ मैं बढ़ता हूँ, मैं नभ की चोटी चढ़ता हूँ,
कुचला जाकर भी धूली-सा आँधी-सा और उमड़ता हूँ
मेरा जीवन ललकार बने, असफलता ही असि-धार बने
इस निर्मम रण में पग-पग का रुकना ही मेरा वार बने !
भव सारा तुझको है स्वाहा सब कुछ तप कर अंगार बने—
तेरी पुकार-सा दुर्निवार मेरा यह नीरव प्यार बने !

(पूर्वा से)

हिरोशिमा

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं
नगर के चौक :
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नहीं
फटी मिट्टी से ।

छायाएँ मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पड़ीं—वह सूरज
नहीं उगा था पूरब में, वह
बरसा सहसा
बीचों-बीच नगर के :
काल-सूर्य के रथ के
पहियों के ज्यों अरे टूट कर
बिखर गये हों
दसों दिशा में !
कुछ क्षण का वह उदय-अस्त !
केवल एक प्रज्वलित क्षण की
दृश्य सोख लेनेवाली दोपहरी
फिर ?

छायाएँ मानव-जन की
नहीं मिटीं लम्बी हो-हो कर :
मानव ही सब भाप हो गये ।

छायाएँ तो अभी लिखी हैं
झुलसे हुए पत्थरों पर
उजड़ी सड़कों की गच पर।

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बना कर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है।

2-9-77

साम्राज्ञी का नैवेद्य-दान

हे महाबुद्ध !
मैं मन्दिर में आयी हूँ
रीते हाथ :
फूल मैं ला न सकी।

औरों का संग्रह
तेरे योग्य न होता
जो मुझे सुनाती
जीवन के विह्वल सुख-क्षण का गीत—
खोलती रूप-जगत् के द्वार, जहाँ
तेरी करुणा
बुनती रहती है
भव के सपनों, क्षण के आनन्दों के
रहःसूत्र अविराम—
उस भोली मुग्धा को
कँपती
डाली से विलगा न सकी।

जो कली खिलेगी जहाँ, खिली,
जो फूल जहाँ है,
जो भी सुख
जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित,
मैं उसे वहीं पर
अक्षत, अनाघ्रांत, अस्पृष्ट, अनाविल
हे महाबुद्ध !
अर्पित करती हूँ तुझे ।
वहीं-वहीं प्रत्येक भरे प्याला जीवन का,
वहीं-वहीं नैवेद्य चढ़ा
अपने सुन्दर आनन्द-निमिष का,
तेरा हो,
हे विगतागत के, वर्त्तमान के, पद्मकोश !
हे महाबुद्ध !

(सुनहले शैवाल से)

प्रश्न-अभ्यास

अज्ञेयजी ने हिन्दी में प्रयोगवादी काव्य-धारा का प्रवर्तन किया था—उनकी रचनाओं के आधार पर इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।

"अज्ञेयजी ने काव्य विषय तो नये दिये ही हैं, नये प्रकार के उपमानों की भी योजना की है।" स्वपठित रचनाओं के आधार पर इस कथन को समझाइए ।

"अज्ञेयजी ने हिन्दी कविता का नव संस्कार किया है।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?

मैंने 'आहुति बन कर देखा' कविता का भाव अपने शब्दों में बताइए ।

'हिरोशिमा' कविता में कवि ने युग को क्या संदेश दिया है ?

साम्राज्ञी ने महाबुद्ध के समक्ष जिस रूप में नैवेद्य दान प्रस्तुत किया है, उसका वर्णन कीजिए ।

भाव स्पष्ट कीजिए :—

(क) वे रोगी होंगे .... यज्ञ की ज्वाला है ।
(ख) मानव का रचा .... मानव का साखी है ।
(ग) जो कली खिलेगी जहाँ .... अर्पित करती हूँ तुझे ।

विविधा

2-9-77

आधुनिक काल में हिन्दी कविता बड़ी त्वरा के साथ परिवर्तनशील रही है। छायावाद के बाद तो यह परिवर्तन का क्रम और भी द्रुत गति से चला है। छायावादी कवि अपने चारों ओर कटु वास्तविकताओं के प्रति उपेक्षाशील रहे। फलस्वरूप कवि दिनकर की शब्दावली में समकालीन सत्य से कविता का वियोग हो गया है। इस वियोगावस्था को समाप्त करने का सर्वप्रथम प्रयास व्यक्तिवादी कवियों हरिवंशराय 'बच्चन', नरेन्द्र शर्मा आदि ने सम्पन्न किया। उसके बाद मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार की छाया में उत्पन्न प्रगतिशील आन्दोलन ने हिन्दी कविता में प्रगतिवाद का प्रवर्तन किया। रामधारी सिंह 'दिनकर', शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' इस धारा के सशक्त कवि कहे जा सकते हैं। पुरानी पीढ़ी के कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' भी इस आन्दोलन से प्रभावित हुए थे।

हिन्दी के इस प्रगतिवादी काव्य में इस जगत के बाह्य यथार्थ का चित्रण अधिक था, लेकिन कविता तो भावना-कल्पना की भाषा है, इसलिए अन्तर जगत के यथार्थ के उद्घाटन की आतुरता को लेकर प्रयोगशील आन्दोलन खड़ा हुआ। इस प्रयोगवादी काव्य पर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का विशेष प्रभाव था। अज्ञेयजी की रचनाओं पर इस सिद्धान्त का प्रभाव अनेक स्थलों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। प्रयोगशील कवियों के बाद आने वाले कवियों ने यह अनुभव किया कि कविता के भीतर और बाहर के समग्र जीवन को अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए और उन्होंने नयी कविता का आन्दोलन खड़ा किया। डा० जगदीश गुप्त ने इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। उसके बाद तो नाराज पीढ़ी की कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, बीट कविता, अकविता आदि के अनेक आन्दोलन खड़े हुए। छायावाद के बाद जो ये अनेक काव्यान्दोलन खड़े हुए हैं, उन्हीं की कुछ झलक देने के लिए यह विविधा संकलित की गयी है।

नरेन्द्र शर्मा

छायावादोत्तर काल में अपने प्रणय गीतों और सामाजिक भावना एवं क्रांतिवादी कविताओं से जनमत को बहुत गहराई से प्रभावित करने वाले कवियों में नरेन्द्र शर्मा हैं; जितनी तन्मयता से उन्होंने प्रेमी मानस के हर्ष-विषाद को वाणी दी, उतने ही आक्रोश और सच्चाई से उन्होंने विशाल जन-मानस की विवशता, विद्रोह-भावना

नव-निर्माण की चेतना को मुखरित किया है। साहित्य और लोकमंच कविसम्मेलनों के माध्यम से नरेन्द्र शर्मा ने जन-जीवन को प्रभावित एवं प्रेरित कर साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया है। अधिकांशत: गीतों के माध्यम से इन्होंने अपने भावों और विचारों को वाणी दी है।

भवानीप्रसाद मिश्र

भवानीप्रसाद मिश्र प्रयोगशील एवं नयी कविता के बड़े सशक्त कवि हैं। संवेदन-कना के आधार पर मिश्रजी ने अपने आस-पास की हलचलों को सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से बड़े प्रभावपूर्ण रूप में तथा नितान्त सहज और बोलचाल की भाषा शैली में व्यक्त कर कविता को आत्मीय वार्तालाप एवं आत्मानुभव कथन के रूप में प्रतिष्ठित किया है। जीवन में जो कुछ स्वस्थ है, मंगलदायक है, आह्लादकारी है उसे उभारने एवं प्रचारित-प्रसारित करने के लिए ही उन्होंने काव्य को साधन बनाया है। "गीत फरोश" नामक प्रसिद्ध रचना में उन्होंने कविसम्मेलनों एवं सवेंज़ बनने का दावा करने वाले रचनाकारों पर परोक्षतः प्रहार किया है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता और ऊब को प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्य एवं गरिमा से मुक्ति प्राप्त कर सम्पन्न किया जा सकता है, यह विश्वास उनकी रचनाओं में मुखर हुआ है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

पद, प्रतिष्ठा और उन्नति की चक्करदार सीढ़ियों पर चढ़ते जाने वाले बुद्धि-जीवियों की मानसिक दासता के युग में गजानन माधव मुक्तिबोध एक रचनाकार के रूप में हिन्दी काव्य जगत में अवतरित हुए। चालाक बुद्धिजीवियों की स्वार्थपरता पर गहरी चोट करने वाले मुक्तिबोध प्राय: अस्पष्ट हो गये हैं। सुविधाप्रिय जीवनपद्धति पर तीखा प्रहार करते हुए मुक्तिबोध ने अपनी सम्पूर्ण्ता भावना को प्रकट किया है। छाया-वादी लिजलिजेपन और प्रगतिवादी थोथे नारों और हुल्लड़बाजी के प्रति असहमति प्रकट करते हुए मुक्तिबोध ने शोषण और भेड़चाल का बड़ा सशक्त विरोध अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है।

गिरिजाकुमार माथुर

रोमांटिक अनुभूति, सम्पन्न प्रणय और सौन्दर्य के प्रति नवीन दृष्टि से युक्त और व्यक्ति मन तथा सामूहिक मन की अनेक अपूर्व अनुभूतियों को वाणी देने वाले गिरिजाकुमार माथुर का प्रयोगशील कवियों में विशिष्ट स्थान है । छायावादी अलौकिकता एवं प्रगतिवादी सांसारिकता की अति से ऊबकर इन्होंने अनेक वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक अनुभूतियों को अत्यन्त सहज एवं बोलचाल की भाषा में व्यक्त कर नवीनता और ताजगी का वातावरण बनाया है। आधुनिक जीवन की जटिलताओं एवं कुण्ठाओं को व्यक्त करते हुए कवि ने सामाजिक उत्तरदायित्व से भी अपने को जोड़ा है। बदलती हुई परिस्थितियों में परिवर्तित मानस के भावों एवं विचारों की कहीं-कहीं बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति इनमें मिलती है ।

धर्मवीर भारती

पद्मश्री धर्मवीर भारती प्रयोगवादी मनोवृत्ति के कारण आधुनिक हिन्दी काव्य में अपनी आधुनिक दृष्टिं, रोमांटिक प्रवृत्ति, व्यक्तिवादी चेतना तथा सहज जीवन्त एवं बोलचाल की भाषा के लिए प्रख्यात हैं। प्रेम के शारीरिक एवं मानसिक दोनों पक्षों को नये-पुराने छंदों में व्यक्त करने वाले महाभारत की कुछ घटनाओं और पात्रों को आधुनिक एवं वैयक्तिकता के आधार पर देखकर "अंधायुग" तथा "कनुप्रिया" एवं वैयक्तिक चेतना के समन्वयकर्ता के रूप में, अपनी नवीनतम रचनाओं में व्यक्त हुए हैं। उनके जीवन्त और मर्मस्पर्शी गद्य में भी उनके कवित्व का स्पर्श मिलता है। व्यक्ति मन और सामूहिक चेतना दोनों ही उनमें व्यक्त हुई हैं ।

नरेन्द्र शर्मा

मधु की एक बूंद

मधु की एक बूंद के पीछे
मानव ने क्या क्या दुख देखे !
मधु की एक बूंद धूमिल घन
दर्शन और बुद्धि के लेखे !

सृष्टि अविद्या का कोल्हू यदि,
विज्ञानी विद्या के अंधे,
मधु की एक बूंद बिन कैसे
जीव करे जीने के धंधे !

मधु की एक बूँद से भी यदि
जुड़ न सके मन का अपनापा,
क्यों दे श्रमिक पसीना, सैनिक
लहू, करे क्यों जाया जापा !

मधु की एक बूँद से बच कर,
व्यक्ति मात्र की बची चदरिया;
ना घर तेरा, ना घर मेरा,
रैन-बसैरा बनीं नगरिया !

मधु की एक बूंद बिन, रीते
पाँचों कोश और पाँचों जन;
मधु की एक बूंद बिन, हम से
सभी योजनायें सौ योजन !

मधु की एक बूंद बिन, ईश्वर
शक्तिमान भी शक्तिहीन है !
मधु की एक बूंद सागर है,
हर जीवात्मा मधुर मीन है।

मधु की एक बूँद पृथ्वी में,
मधु की एक बूंद शशि-रवि में !
मधु की एक बूंद कविता में,
मधु की एक बूंद है कवि में !

मधु की एक बूंद के पीछे
मैंने अब तक कष्ट सहे शत;
मधु की एक बूंद मिथ्या है —
कोई ऐसी बात कहे मत !

(बहुत रात गए से)

भवानीप्रसाद मिश्र

बूँद टपकी एक नभ से

बूंद टपकी एक नभ से,
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो,
हँस रही-सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो;
ठगा-सा कोई किसी की आँख
देखे रह गया हो,
उस बहुत से रूप को, रोमांच
सह गया हो।
बूँद टपकी एक नभ से,
और जैसे पथिक
छू मुस्कान, चौंके और घूमे
आँख उसकी, जिस तरह
हँसती हुई-सी आँख चूमे,
उस तरह मैंने उठाई आँख :

बादल फट गया था,
चन्द्र पर आता हुआ-सा अभ्र
थोड़ा हट गया था।
बूँद टपकी एक नभ से,
यें कि जैसे आँख मिलते ही
झरोखा बन्द हो ले,
और नूपुर ध्वनि, झमक कर,
जिस तरह द्रुत छन्द हो ले,
उस तरह बादल सिमट कर,
चन्द्र पर छाये अचानक,
और पानी के हज़ारों बूँद
तब आये अचानक।

(दूसरा सप्तक से)

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुझे क़दम-क़दम पर

मुझे क़दम-क़दम पर
चौराहे मिलते हैं
बाहें फैलाये !!

एक पैर रखता हूँ
कि सौ राहें फूटतीं,
व मैं उन सब पर से गुज़रना चाहता हूँ;
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुर्बे और अपने सपने......
सब सच्चे लगते हैं;
अजीब सी अकुलाहट दिल में उभरती है,
मैं कुछ गहरे में उतरना चाहता हूँ,
जाने क्या मिल जाये !!

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर-एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है,
पल-भर मैं सब में से गुज़रना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ,
इस तरह ख़ुद ही को दिये-दिये फिरता हूँ.
अजीब है ज़िन्दगी ! !

कहानियाँ ले कर और
मुझ को कुछ दे कर ये चौराहे फैलते
जहाँ ज़रा खड़े हो कर
बातें कुछ करता हूँ……
……उपन्यास मिल जाते ।

दु:ख़ की कथाएँ, तरह-तरह की शिकायतें,
अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
ज़माने के जानदार सूरे व आयतें
सुनने को मिलती हैं ।

कविताएँ मुसकरा लाग-डाँट करती हैं,
प्यार बात करती हैं ।
मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियाँ
श्रद्धाएँ चढ़ती हैं ! !

घबराये प्रतीक और मुसकाते रूप-चित्र
ले कर मैं घर पर जब लौटता…

उपमाएँ, द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ वरस और तुम्हें
जीना ही चाहिए।

घर पर भी, पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बाहें फैलाये रोज़ मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं,
नव-नवीन रूप-दृश्य वाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज़ मिलते हैं…
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन् यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है,
और, वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है ! !

(चाँद का मुँह टेढ़ा है से)

गिरिजाकुमार माथुर

चित्रमय धरती

ये धूसर, साँवर, मटयाली, काली धरती
फैली है कोसों आसमान के घेरे में
रूखों छाये नालों के हैं तिरछे ढलान
फिर हरे-भरे लम्बे चढ़ाव
झरबेरी, ढाक, कास से पूरित टीलों तक
जिनके पीछे छिप जाती है
गढ़बाटों की रेखा गहरी

ये सोंधी घास ढँकी रूँदे
हैं धूप बुझी हारें भूरी
सूनी-सूनी उन चरगाहों के पार कहीं
धुँधली छाया वन चली गयी है
पाँत दूर के पेड़ों की
उन ताल वृक्ष के झौरों के आगे दिखती
नीली पहाड़ियों की झाँई
जो लटें पसारे हुए जंगलों से मिलकर
है एक हुई

यह चित्रमयी धरती फैली है कोसों तक
जिसके वन-पेड़ों के ऊपर
नीमों, आमों, वट, पीपल पर
निखरे-निखरे मौसम आते
कच्ची मिट्टी के गाँवों पर
भर जाते हैं खेरे और खेत
फिर रंग-बिरंगी फ़सलों से
जिनमें सूरज की धूप दूध बन रम जाती
हर दाने में रच जाता अमरित चन्दा का

इस धूसर सांवर धरती की सोंधी उसांस
कच्ची मिट्टी का ठण्डापन
मटयाला-सा हलका साया
तन मन में साँसों में छाया
जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठण्डक इन प्रानों में
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली-खुशबू मन्द हवाओं में ।

(लैण्ड्स्केप : धूप के धान से)

धर्मवीर भारती

साँझ के बादल

ये अनजान नदी की नावें
जादू के-से पाल
उड़ातीं
आतीं
मन्थर चाल !
नीलम पर किरनों
की साँझी
एक न डोरी
एक न माँझी
फिर भी लाद निरन्तर लातीं
सेन्दुर और प्रवाल !

कुछ समीप की
कुछ सुदूर की
कुछ चन्दन की
कुछ कपूर की
कुछ में गेरु, कुछ में रेशम
कुछ में केवल जाल !

ये अनजान नदी की नावें
जादू के-से पाल
उड़ातीं
आतीं
मन्थर चाल…

(सात गीत-वर्ष से)

20-9-77 End

परिशिष्ट

रस, छंद और अलंकार

रस

कविता, कहानी, उपन्यास आदि को पढ़ने या सुनने से एवं नाटक को देखने से जिस आनंद की अनुभूति होती है उसे रस कहते हैं। रस काव्य की आत्मा है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है—'**वाक्यं रसात्मकं काव्यं**' अर्थात रसात्मक वाक्य काव्य है। रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में व्याख्या की है—'**विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः**' अर्थात विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

रसों के आधार भाव हैं। भाव मन के विकारों को कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—स्थायी भाव और संचारी भाव। यही काव्य के अंग कहलाते हैं।

स्थायी भाव

रस रूप में पुष्ट या परिणत होने वाला तथा सम्पूर्ण प्रसंग में व्याप्त रहने वाला भाव स्थायी भाव कहलाता है। स्थायी भाव नौ माने गये हैं—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। वात्सल्य नाम का दसवाँ स्थायी भाव भी स्वीकार किया जाता है।

रति—स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम-भाव को रति कहते हैं।

हास—किसी के अंगों, वेश-भूषा, वाणी आदि के विकारों के ज्ञान से उत्पन्न प्रफुल्लता को हास कहते हैं।

शोक—इष्ट के नाश अथवा अनिष्टागम के कारण मन में उत्पन्न व्याकुलता शोक है।

क्रोध—अपना काम बिगाड़ने वाले अपराधी को दंड देने के लिए उत्तेजित करने वाली मनोवृत्ति क्रोध कहलाती है।

उत्साह—दान, दया और वीरता आदि के प्रसंग से उत्तरोत्तर उन्नत होने वाली मनोवृत्ति को उत्साह कहते हैं।

भय—प्रबल अनिष्ट करने में समर्थ विषयों को देखकर मन में जो व्याकुलता होती है, उसे भय कहते हैं।

जुगुप्सा—घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को देखकर उनसे सम्बन्ध न रखने के लिए बाध्य करने वाली मनोवृत्ति को जुगुप्सा कहते हैं।

विस्मय—किसी असाधारण अथवा अलौकिक वस्तु को देखकर जो आश्चर्य होता है, उसे विस्मय कहते हैं।

निर्वेद—संसार के प्रति त्याग भाव को निर्वेद कहते हैं।

वात्सल्य—पुत्रादि के प्रति सहज स्नेह भाव वात्सल्य है।

विभाव

जो व्यक्ति, वस्तु, परिस्थितियाँ आदि स्थायी भावों को जागरित या उद्दीप्त करती हैं, उन्हें विभाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं। १. आलम्बन २. उद्दीपन।

आलम्बन विभाव—स्थायी भाव जिन व्यक्तियों, वस्तुओं आदि का अवलम्ब लेकर अपने को प्रकट करते हैं, उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। इसके दो भेद हैं—आश्रय और विषय।

आश्रय—जिस व्यक्ति के मन में रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं, उसे आश्रय कहते हैं।

विषय—जिस व्यक्ति या वस्तु के कारण आश्रय के चित्त में रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं, उसे विषय कहते हैं।

उद्दीपन विभाव—भाव को उद्दीप्त अथवा तीव्र करने वाली वस्तुएँ, चेष्टाएँ आदि को उद्दीपन विभाव कहते हैं।

उदाहरणार्थ सुन्दर, पुष्पित और एकान्त उद्यान में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में रति भाव जागरित होता है। यहाँ शकुन्तला आलम्बन विभाव है; और पुष्पित तथा एकान्त उद्यान उद्दीपन विभाव। दुष्यन्त आश्रय है। प्रायः नायक एवं नायिका आलम्बन विभाव होते हैं। शृंगार के उद्दीपन विभाव प्रायः बसन्त काल, उद्यान, शीतल-मंद-सुगंधित पवन, भ्रमर-गुंजन इत्यादि होते हैं।

अनुभाव

आश्रयगत आलम्बन की उन चेष्टाओं को जो उसे स्थायी भाव का अनुभव कराती हैं, अनुभाव कहते हैं। भाव कारण और अनुभाव कार्य हैं।

अनुभाव चार प्रकार के माने गये हैं—कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्त्विक।

कायिक अनुभाव—आँख, भौंह, हाथ आदि शरीर के अंगों द्वारा जो चेष्टाएँ की जाती हैं।

मानसिक अनुभाव—मानसिक चेष्टाओं को मानसिक अनुभाव कहते हैं।

आहार्य अनुभाव—वेशभूषा से जो भाव प्रदर्शित किये जाते हैं।

सात्त्विक अनुभाव—शरीर के सहज अंग विकार।

सचारी भाव

आश्रय के चित्त में उत्पन्न होने वाले अस्थिर मनोविकारों को संचारी भाव कहते हैं। उदाहरणार्थ, श्रृंगार रस के प्रकरण में शकुन्तला से प्रीतिवद्ध दुष्यन्त के चित्त में उल्लास, चपलता, व्याकुलता आदि भाव संचारी भाव हैं। इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। इनकी संख्या ३३ मानी गयी है—

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विवोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, उत्सुकता, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, संत्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता और वितर्क।

स्थायीभाव उत्पन्न होकर नष्ट नहीं होते और संचारी भाव पानी के बुलबुलों की भाँति बनते-मिटते रहते हैं।

प्रत्येक रस का स्थायी भाव नियत है, जब कि एक ही संचारी भाव अनेक रसों के साथ रह सकता है।

इन्हीं विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त होता है।

रस और उनके स्थायी भाव—

१. श्रृंगार	रति	६. भयानक	भय
२. हास्य	हास	७. वीभत्स	जुगुप्सा
३. करुण	शोक	८. अद्भुत	विस्मय
४. रौद्र	क्रोध	९. शांत	निर्वेद
५. वीर	उत्साह	१०. वत्सल	वात्सल्य

१—श्रृंगार रस

सहृदय के चित्त में रति नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग होता है तो वह श्रृंगार रस का रूप धारण कर लेता है। इसके दो भेद होते हैं—संयोग और वियोग, इन्हें क्रमश: संभोग एवं विप्रलम्भ भी कहते हैं।

संयोग श्रृंगार—नायक और नायिका के मिलन का वर्णन संयोग श्रृंगार कहलाता है। उदाहरण—

कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार;
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार !

—प्रसाद : कामायनी।

इस प्रकरण में रति स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव हैं—श्रद्धा (विषय) और मनु (आश्रय)। उद्दीपन विभाव हैं—एकान्त प्रदेश, श्रद्धा की कमनीयता, कोकिल-कण्ठ, रम्य परिधान। संचारी भाव हैं—आश्रय मनु के हर्ष, चपलता, आशा, उत्सुकता आदि भाव।

इस प्रकार विभावादि से पुष्ट रति स्थायी भाव शृंगार रस की दशा को प्राप्त हुआ है।

वियोग शृंगार—जिस रचना में नायक एवं नायिका के मिलन का अभाव रहता है और विरह का वर्णन होता है, वहाँ वियोग शृंगार होता है। उदाहरण—

मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्रवाले।
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा सँदेशा।
मैं रो रो के प्रिय-विरह से बावली हो रही हूँ।
जा के मेरी सब दुख-कथा श्याम को तू सुना दे।।

—हरिऔध : प्रियप्रवास।

इस छंद में विरहिणी राधा की विरह-दशा का वर्णन किया गया है। रति स्थायी भाव है। राधा आश्रय और श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। शीतल, मंद पवन और एकांत उद्दीपन विभाव है। स्मृति, रुदन, चपलता, आवेग, उन्माद आदि संचारियों से पुष्ट श्रीकृष्ण से मिलन के अभाव में यहाँ वियोग शृंगार रस का परिपाक हुआ है।

२—हास्य रस

अपने अथवा पराये परिधान, वचन अथवा क्रिया-कलाप आदि से उत्पन्न हुआ हास नामक स्थायी भाव विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से हास्य रस का रूप ग्रहण करता है। उदाहरण—

मातहिं पितहिं उरिन भये नीके।
गुरु ऋण रहा सोच बड़ जी के।।

—तुलसी : रामचरितमानस।

परशुराम-लक्ष्मण संवाद में लक्ष्मण की यह हास्यमय उक्ति है। हास इसका स्थायी भाव है। परशुराम आलम्बन हैं। उनकी झुंझलाहट उद्दीपन है। हर्ष, चपलता आदि संचारी हैं। इन सबसे पुष्ट हास स्थायी हास्य रस दशा को प्राप्त हुआ है।

३—करुण रस

शोक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से करुण रस की दशा को प्राप्त होता है। उदाहरण—

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जो जड़ दैव जियावइ मोही।।

—तुलसी : रामचरितमानस।

यहाँ लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम का विलाप प्रस्तुत किया गया है। शोक स्थायी भाव है। लक्ष्मण आलम्बन और राम आश्रय हैं। राम के उद्गार अनुभाव हैं। हनुमान का विलम्ब उद्दीपन एवं दैन्य, चिंता, व्याकुलता, स्मृति आदि संचारी हैं। इन सबसे पुष्ट शोक स्थायी करुण रस दशा को प्राप्त हुआ है।

४—रौद्र रस

क्रोध नामक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रौद्र रस का रूप धारण कर लेता है। उदाहरण—

ज्वलल्ललाट पर अवश्य, तेज वर्तमान था
प्रचण्ड मान भंग जन्य, क्रोध वर्धमान था
ज्वलन्त पुच्छ-बाहु व्योम में उछालते हुए
अराति पर असह्य अग्नि-दृष्टि डालते हुए
उठे कि दिग-दिगन्त में अवर्ण्य ज्योति छा गई।
कपीश के शरीर में प्रभा स्वयं समा गई।।

—श्यामनारायण पाण्डेय : जय हनुमान

इस पद में लंका में हनुमानजी की पूँछ के जलाये जाने पर उनकी प्रतिक्रिया का वर्णन है। यहाँ क्रोध स्थायी भाव है। हनुमान आश्रय हैं। शत्रु आलम्बन है। राक्षसों का सामने पड़ना उद्दीपन, पूँछ को आकाश में उछालना, अग्नि-दृष्टि डालना, तन का तेज आदि अनुभाव हैं। आवेश, चपलता, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। इन सबसे पुष्ट क्रोध स्थायी ने रौद्र रस का रूप ग्रहण किया है।

५—वीर रस

उत्साह नामक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से वीर रस की दशा को प्राप्त होता है। उदाहरण—

आये होंगे यदि भरत कुमति-वश वन में,
तो मैंने यह संकल्प किया है मन में—
उनको इस शर का लक्ष चुनूंगा क्षण में,
प्रतिषेध आपका भी न सुनूंगा रण में।

—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत।

इस पद में उत्साह स्थायी भाव है। लक्ष्मण आश्रय और भरत आलम्बन हैं। उनके वन में आगमन का समाचार उद्दीपन है। लक्ष्मण के वचन अनुभाव हैं। उत्सुकता, उग्रता, चपलता आदि संचारी भाव हैं। इनसे पुष्ट उत्साह स्थायी वीर रस दशा को प्राप्त हुआ है।

६—भयानक रस ✓ Imp

भय नामक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से भयानक रस का रूप ग्रहण करता है। उदाहरण—

लंका की सेना तो कपि के गर्जन रव से काँप गई।
हनूमान के भीषण दर्शन से विनाश ही भाँप गई।
उस कंपित शंकित सेना पर कपि नाहर की मार पड़ी।
त्राहि त्राहि शिव त्राहि त्राहि शिव की सब ओर पुकार पड़ी॥

—श्यामनारायण पाण्डेय : जय हनुमान।

यहाँ भय स्थायी भाव है। लंका की सेना आश्रय एवं हनुमान आलम्बन हैं। गर्जन-रव और भीषण-दर्शन उद्दीपन है। काँपना, त्राहि-त्राहि पुकारना आदि अनुभाव हैं। शंका, चिंता, संत्रास आदि संचारी भाव हैं। इनसे पुष्ट भय स्थायी भाव भयानक रस को प्राप्त हुआ है।

७—वीभत्स रस

जुगुप्सा (घृणा) स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोगसे वीभत्स रस का रूप ग्रहण करता है। उदाहरण—

कोउ अँतड़िनि की पहिरि माल इतरात दिखावत।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत॥
कोउ मुंडनि लै मानि मोद कंदुक लौं डारत।
कोउ रुंडनि पै बैठि करेजौ फारि निकारत॥

—रत्नाकर : हरिश्चन्द्र।

उपर्युक्त पद में जुगुप्सा स्थायी भाव है। श्मशान का दृश्य आलम्बन है। अँतड़ी की माला पहन कर इतराना, चोप सहित शरीर पर चर्बी का पोतना, हाथ में मुंडों को लेकर गेंद की तरह उछालना आदि उद्दीपन विभाव हैं। दैन्य, ग्लानि, निर्वेद आदि संचारी भाव हैं। इन सबसे पुष्ट जुगुप्सा स्थायी भाव वीभत्स रस दशा को प्राप्त हुआ है।

८—अद्‌भुत रस

विस्मय नामक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से अद्‌भुत रस की दशा को प्राप्त होता है। विविध प्रकरणों में लोकोत्तरता देखकर जो आश्चर्य होता है, उसे विस्मय कहते हैं। उदाहरण—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोरि कि आन बिसेखा॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरनन सिर नावा॥

—तुलसी : रामचरितमानस।

यहाँ विस्मय स्थायी भाव है। माता कौशल्या आश्रय तथा यहाँ वहाँ दो बालक दिखायी देना आलम्बन है। 'तन पुलकित मुख बचन न आवा' में रोमांच और स्वरभंग अनुभाव हैं। जड़ता, वितर्क आदि संचारी हैं। अतः यहाँ अद्भुत रस है।

९—शांत रस

निर्वेद नामक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से शांत रस का रूप ग्रहण करता है। उदाहरण—

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भव निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिंतामनि उर करतें न खसैहौं।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं।

—तुलसी : विनयपत्रिका।

यहाँ निर्वेद स्थायी भाव है। सांसारिक असारता और इन्द्रियों द्वारा उपहास उद्दीपन है। स्वतंत्र होने तथा राम के चरणों में रति होने का कथन अनुभाव है। धृति, वितर्क, मति आदि संचारी हैं। इन सबसे पुष्ट निर्वेद शांत रस को प्राप्त हुआ है।

१०—वत्सल रस

वात्सल्य नामक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से 'वत्सल रस' संपुष्ट होता है। उदाहरण—

जसोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं, जोइ-सोइ कछु गावैं।
मेरे लाल को आव री निंदरिया, काहे न आन सुवावैं।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावैं।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानिं मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावैं।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावैं।
जो सुख 'सूर' अमर-मुनि दुर्लभ, सो नँद-भामिनि पावैं।१।

—सूर : सूरसागर।

इसमें वात्सल्य स्थायी भाव है। यशोदा आश्रय और कृष्ण आलम्बन हैं। यशोदा का गीत गाना आदि अनुभाव हैं। इन सबसे पुष्ट वात्सल्य स्थायी भाव वत्सल रस दशा को प्राप्त हुआ है।

छंद

छंद कविता की स्वाभाविक गति के नियम-बद्ध रूप हैं। 'सामान्य धारणा के अनुसार जातीय संगीत और भाषावृत्ति के आधार पर निर्मित लयादर्श की आवृत्ति को छंद कहते हैं।' छंद में निश्चित मात्रा या वर्ण की गणना होती है। छंद के आदि आचार्य पिंगल हैं। इसी से छंद शास्त्र को पिंगल शास्त्र भी कहते हैं।

चरण—प्रत्येक छंद चरणों में विभाजित होता है। इनको पद या पाद कहते हैं। जिस प्रकार मनुष्य चरणों पर चलता है, उसी प्रकार कविता भी चरणों पर चलती है। एक छंद में प्रायः चार चरण होते हैं जो सामान्यतः चार पंक्तियों में लिखे जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं छंदों में, जैसे—छप्पय, कुंडलिया आदि में छः चरण होते हैं।

वर्ण और मात्रा—वर्णों की गणना करते समय वर्ण चाहे लघु हो अथवा गुरु उसे एक ही माना जाता है, यथा—'रम', 'राम', 'रामा'—तीनों शब्दों में दो-दो वर्ण हैं। मात्रा से अभिप्राय उच्चारण के समय की मात्रा से है। गुरु में लघु की अपेक्षा दूना समय लगता है इसलिए मात्राओं की जहाँ गणना होती है वहाँ लघु की एक मात्रा होती है और गुरु की दो मात्राएँ होती हैं। लघु का संकेत खड़ी रेखा '।' और गुरु का संकेत वक्र रेखा 'ऽ' होता है। लघु के लिए 'ल' और गुरु के लिए 'ग' के संकेत का भी प्रयोग होता है।

गुरु—नीचे लिखे वर्ण गुरु माने जाते हैं—

(क) दीर्घ स्वरों वाले (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ) वर्ण।

(ख) संयुक्त वर्ण से पूर्व के वर्ण।

(ग) अनुस्वार वाले वर्ण (चन्द्रविन्दु वाले वर्ण लघु ही माने जाते हैं)।

(घ) विसर्ग वाले वर्ण, जैसे—अन्तःकरण।

(ङ) कभी-कभी पाद की पूर्ति के लिए अन्त का वर्ण गुरु मान लिया जाता है। हलन्त वर्ण गिने नहीं जाते, किन्तु उनके पूर्व का वर्ण गुरु हो जाता है।

विशेष—कहीं-कहीं मात्राओं की गणना में चरण की पूर्ति के लिए उच्चारण को दृष्टि में रखकर लघु को गुरु और गुरु को लघु रूप में माना जाता है।

गण—तीन वर्णों के लघु गुरु क्रम के अनुसार योग को गण कहते हैं। गणों की संख्या आठ है—यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण।

गणों को समझने के लिए निम्नलिखित सूत्र उपयोगी हैं—

यमाताराजभानसलगा

इस सूत्र से आठों गणों का स्वरूप ज्ञात हो जाता है । यथा—

गण का नाम	संकेत	सूत्रगत उदाहरण	सार्थक उदाहरण
यगण	ISS	यमाता	यशोदा
मगण	SSS	मातारा	मायावी
तगण	SSI	ताराज	तालाब
रगण	SIS	राजभा	रामजी
जगण	ISI	जभान	जलेश
भगण	SII	भानस	भारत
नगण	III	नसल	नगर
सगण	IIS	सलगा	सरिता

सम, अर्द्धसम और विषम—

जिन छंदों के चारों चरणों की मात्राएँ या वर्ण एक से हों वे सम कहलाते हैं, जैसे चौपाई, इन्द्रवज्रा आदि । जिनमें पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणों की मात्राओं या वर्णों में समता हो वे अर्द्धसम कहलाते हैं, जैसे—दोहा, सोरठा आदि । जिन छंदों में चार से अधिक (छ:) चरण हों और वे एक से न हों, वे विषम कहलाते हैं, जैसे—छप्पय और कुंडलिया ।

गति—पढ़ते समय कविता के स्पष्ट सुखद प्रवाह को गति कहते हैं ।

यति—छंदों में विराम या रुकने के स्थलों को यति कहते हैं ।

छंद के प्रकार

मात्रा और वर्ण के आधार पर छंद मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं, मात्रिक और वर्णवृत्त ।

मात्रिक छंद

मात्रिक छंदों में केवल मात्राओं की व्यवस्था होती है, वर्णों के लघु और गुरु के क्रम का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता । इन छंदों के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या नियत रहती है । मात्रिक छंद तीन प्रकार के होते हैं—सम, अर्द्धसम और विषम ।

चौपाई—चौपाई सम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। अंत में जगण और तगण के प्रयोग का निषेध है। उदाहरण—

। । ।   ऽ ।   ऽ । ।   । । ऽ ऽ
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे।
सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को।
अचर सचर चर अचर करत को॥

—तुलसी : रामचरितमानस।

इस छंद के प्रत्येक चरण में १६-१६ मात्राएँ हैं अतः यह चौपाई छंद है।

दोहा—यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। इसके विषम चरणों के आदि में जगण नहीं होना चाहिए तथा सम चरणों के अन्त में गुरु लघु होना चाहिए। उदाहरण—

। । । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ ।
लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभां जनु तनु धरें, भगति सच्चिदानन्दु॥

—तुलसी : रामचरितमानस।

इस पद्य के पहले और तीसरे चरण में १३–१३ मात्राएँ हैं और दूसरे तथा चौथे चरण में ११–११ मात्राएँ हैं। अतः यह छंद दोहा है।

सोरठा—यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसके प्रथम और तृतीय चरण में ११–११ मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में १३–१३ मात्राएँ होती हैं। पहले और तीसरे चरण के अन्त में गुरु लघु आते हैं और कहीं-कहीं तुक भी मिलती है। यह दोहा का उलटा होता है। उदाहरण—

ऽ । । ऽ । । ऽ । । । । । । । ऽ । । । । ।
नील सरोरुह स्याम; तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन॥

—तुलसी : रामचरितमानस।

इस पद्य के प्रथम और तृतीय चरण में ११–११ तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३–१३ मात्राएँ हैं। अतः यह छंद सोरठा है।

रोला—यह सम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। ११ और १३ मात्राओं पर यति होती है। उदाहरण—

। । ऽ। । ऽऽ। ऽ। । । । । । । ऽ। ।
कोउ पापिह पंचत्व प्राप्त सुनि जमगन धावत।
बनि बनि बावन वीर बढ़त चौचंद मचावत।
पै तकि ताकी लोथ त्रिपथगा के तट लावत।
नौ द्वै, ग्यारह होत तीन पाँचहि बिसरावत।।

—भारतेन्दु : गंगावतरण।

इसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ हैं। ११, १३ पर यति है, अतः यह छंद रोला है।

कुण्डलिया—यह विषम मात्रिक छंद है। इसमें छः चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। आदि में एक दोहा और वाद में एक रोला जोड़ कर कुण्डलिया छंद बनता है। ये दोनों छंद मानों कुण्डली रूप में एक दूसरे से गुँथे रहते हैं इसलिए इसे कुण्डलिया छंद कहते हैं। जिस शब्द से इस छंद का प्रारम्भ होता है उसी से इसका अन्त भी होता है। दोहे का चौथा चरण रोला के प्रथम चरण का भाग होकर आता है। उदाहरण—

ऽऽ ऽ। । ऽ।ऽ । । ऽ। । । ।ऽ।
साईं बैर न कीजिए गुरु पण्डित कवि यार।
बेटा बनिता पौरिया यज्ञ करावन हार।
यज्ञ करावनहार राजमंत्री जो होई।
विप्र पड़ोसी वैद्य आपुको तपै रसोई।
कह गिरिधर कविराय जुगन सों यह चलि आई।
इन तेरह को तरह दिये बनि आवै साईं।।

इस पद्य के प्रथम एवं द्वितीय चरण दोहा हैं तथा आगे के चार चरण रोला हैं। दोनों के कुण्डलित होने से कुण्डलिया छंद का निर्माण हुआ है।

हरिगीतिका—यह सम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। १६ और १२ मात्राओं पर यति होती है। प्रत्येक चरण के अन्त में रगण (ऽ।ऽ) आना आवश्यक है। उदाहरण—

।।ऽ।ऽऽ ऽ।ऽ ।।।। ।ऽऽऽ ।ऽ
खग-वृन्द सोता है अतः कल कल नहीं होता वहाँ।
बस मंद मारुत का गमन ही मौन है खोता जहाँ।
इस भाँति धीरे से परस्पर कह सजगता की कथा।
यों दीखते हैं वृक्ष ये हों विश्व के प्रहरी यथा।

—हरिऔध : प्रियप्रवास।

इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ हैं। अतः यह हरिगीतिका छंद है।

बरवै—यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में १२–१२ मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ७–७ मात्राएँ होती हैं। सम चरणों के अन्त में जगण (।ऽ।) होता है। उदाहरण—

ऽ।। ।।ऽ ।। ।। ।।। ।ऽ।
चम्पक हरवा अँग मिलि, अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुँभिलाय॥

—तुलसी : बरवै रामायण।

वर्ण वृत्त

जिन छंदों की रचना वर्णों की गणना के आधार पर की जाती है उन्हें वर्ण वृत्त या वर्णिक छंद कहते हैं।

वर्ण वृत्तों के तीन मुख्य भेद हैं—सम, अर्द्धसम, विषम।

इन्द्रवज्रा—यह सम वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ११ वर्ण त त ज ग ग अर्थात् दो तगण एक जगण और दो गुरु के क्रम से रहते हैं।

उदाहरण—

त त ज ग ग
ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ
मैं जो नया ग्रंथ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है।
देखूं उसे मैं नित नेम से ही,
मानो मिला मित्र मुझे पुराना।

—हरिऔध।

उपर्युक्त पद्य के प्रत्येक चरण में दो तगण एक जगण और दो गुरु के क्रम से ११ वर्ण हैं अतः यह छंद इन्द्रवज्रा है।

उपेन्द्र वज्रा—यह सम वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज ग ग' अर्थात् जगण, तगण, जगण और दो गुरु के क्रम से ११ वर्ण होते हैं। उदाहरण—

ज त ज ग ग
।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ
वड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा।

—हरिऔध।

इस पद्य के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु के क्रम से ११ वर्ण हैं। अतः यह छंद उपेन्द्रवज्रा है।

वसन्ततिलका—यह सम वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज ग ग' अर्थात् तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु के क्रम से चौदह वर्ण होते हैं। उदाहरण—

त भ ज ज ग ग
ऽ ऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ
जो राजपंथ वन-भूतल में बना था,
धीरे उसी पर सधा रथ जा रहा था।
हो हो विमुग्ध रुचि से अवलोकते थे,
ऊधो छटा विपिन की अति ही अनूठी।

—हरिऔध : प्रियप्रवास।

इस छंद के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु के क्रम से १४ वर्ण हैं। अतः यह वसन्ततिलका छंद है।

मालिनी—यह सम वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'न न म य य' अर्थात् दो नगण एक मगण और दो यगण के क्रम से १५ वर्ण होते हैं। ८, ७ वर्णों पर यति होती है। उदाहरण—

न न म य य

। । । । । । S S S । S S । S S

प्रिय पति वह मेरा, प्राण प्यारा कहाँ है।
दुख-जलधि निमग्ना, का सहारा कहाँ है।
अब तक जिसको मैं, देख के जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा, नेत्र तारा कहाँ है।।

—हरिऔध : प्रियप्रवास।

इस पद्य में दो नगण, एक मगण तथा दो यगण के क्रम से १५ वर्ण हैं। अतः यह मालिनी छंद है।

सवैया—बाइस से छब्बीस तक के वर्ण वृत्त 'सवैया' कहलाते हैं। मत्तगयंद तथा सुन्दरी, सवैया छंद के भेद हैं।

मत्तगयंद (सवैया)—यह सम वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ७ भगण और दो गुरु के क्रम से २३ वर्ण होते हैं। उदाहरण :—

भ भ भ भ भ भ भ ग ग

S । । S । । S । । S । । S । । S । । S । । S S

सीस जटा, उर-बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहें।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्राम बधू सिय सों, कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं।।

—तुलसी : कवितावली।

इस पद्य में ७ भगण और दो गुरु के क्रम से २३ वर्ण हैं। अतः यह मत्तगयंद सवैया छंद है। इसके प्रथम चरण के अन्त में 'छी सी' का लघु उच्चारण 'छि सि' होगा।

सुन्दरी सवैया—यह सम वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में आठ सगण और एक गुरु वर्ण के क्रम से २५ वर्ण होते हैं। उदाहरण—

स स म म स स स स ग

।। S ।। S ।। S ।। S ।। S ।। S ।। S ।। S S

भुव भारहि संयुत राकस को गन जाय रसातल मैं अनुराग्यौ।
जग में जय शब्द समेतहिं 'केसव' राज विभीषन के सिर जाग्यौ।
मय-दानव नंदिनी के सुख सों मिलि कैं सिव के हिय के दुख भाग्यौ।
सुर दुंदुभि सीस गजा सर राम को रावन के सिर साथहि लाग्यौ।

—केशव : रामचन्द्रिका।

छव्वीस से अधिक वर्णों वाले छंद दंडक कहलाते हैं।

मनहर कवित्त—यह दंडक वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। १६–१५ वर्णों पर यति होती है। अन्त में एक गुरु वर्ण होता है। उदाहरण—

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूंदें पड़ती थीं घटा छाई थी।
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली-झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी।
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई! मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।

—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत।

इसके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण हैं और १६ तथा १५ पर यति है। यह मनहर कवित्त है। इसे मनहरण कवित्त भी कहते हैं।

अलंकार

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं। अलंकार के मुख्य दो भेद हैं, शब्दालंकार और अर्थालंकार। जहाँ शब्दों के कारण चमत्कार आ जाता है वहाँ शब्दालंकार तथा जहाँ अर्थ के कारण रमणीयता आ जाती है वहाँ अर्थालंकार होता है।

शब्दालंकार

अनुप्रास, यमक और श्लेष शब्दालंकार हैं।

अनुप्रास—जहाँ व्यंजनों की बार-बार आवृत्ति हो, चाहे उनके स्वर मिलें या न मिले वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। अनुप्रास के पाँच भेद होते हैं।

(१) छेकानुप्रास (२) वृत्यनुप्रास (३) श्रुत्यनुप्रास (४) लाटानुप्रास
(५) अन्त्यानुप्रास।

छेकानुप्रास—जहाँ एक या अनेक वर्णों की आवृत्ति केवल एक बार होती है वहाँ छेकानुप्रास होता है।

राधा के बर बैन सुनि चीनी चकित सुभाइ।
दाख दुखी मिसरी मुई सुधा रही सकुचाइ।

यहाँ ब, च, द, म और स वर्णों की एक-एक बार आवृत्ति हुई है, अतः छेकानुप्रास है।

वृत्यनुप्रास—जहाँ एक अथवा अनेक वर्णों की आवृत्ति दो या दो से अधिक बार हो, वहाँ वृत्यनुप्रास होता है।

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।

यहाँ, 'त' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने के कारण वृत्यनुप्रास है।

श्रुत्यनुप्रास—जहाँ कण्ठ तालु आदि एक स्थान से बोले जाने वाले वर्णों की आवृत्ति होती है, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है।

तुलसीदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई।

इसमें दन्त्य वर्णों त, ल, स, र, न की आवृत्ति हुई है, अतः इसमें श्रुत्यनुप्रास है।

लाटानुप्रास—शब्द और उसका अर्थ वही रहे, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय, उसे लाटानुप्रास कहते हैं।

तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निस दिन हरिगान।
तीरथ-व्रत-साधन कहा, बिन निस दिन हरिगान।।

इसमें शब्द और अर्थ वही है परन्तु अन्वय करने से अर्थ में भिन्नता आ जाने के कारण लाटानुप्रास है।

विशेष—लाट देश के कवियों द्वारा खोजे और फिर प्रचलित किये जाने के कारण यह अलंकार लाटानुप्रास कहलाता है। गुजरात में भड़ौच और अहमदाबाद के पास यह प्रदेश था।

अन्त्यानुप्रास—जहां चरण या पद के अन्त में स्वर या व्यंजन की समानता होती है वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन-अमिय दृग दोष विभंजन।।

इसमें अन्त में न वर्ण की समानता के कारण अन्त्यानुप्रास है।

यमक

जहाँ भिन्न-भिन्न अर्थों वाले या निरर्थक शब्दों की आवृत्ति हो वहाँ यमक अलंकार होता है।

इकली डरी हौं, घन देखि के डरी हौं,
खाय बिस की डरी हौं घनस्याम मरि जाइहौं।

ऊपर के पद में 'डरी' तीन बार आया है—अर्थ भिन्न-भिन्न है। पहली डरी का अर्थ 'पड़ी' है, दूसरी डरी का अर्थ 'भयभीत' है तथा तीसरी डरी का अर्थ विष की डली या टुकड़ी है।

श्लेष

जहाँ एक शब्द का एक ही बार प्रयोग होता है और उसके एक से अधिक अर्थ होते हैं, वहाँ श्लेषालंकार होता है।

चिरजीवो जोरी जुरे क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर।।

यहाँ वृषभानुजा दो अर्थों में प्रयुक्त है, पहला वृषभानु की पुत्री राधा, दूसरा वृषभ की अनुजा गाय।

इसी प्रकार 'हलधर के बीर' के भी दो अर्थ हैं। (१) हलधर अर्थात बलराम के भाई कृष्ण तथा (२) हल को धारण करने वाले बैल के भाई बैल। 'वृषभानुजा' तथा 'हलधर' के एक से अधिक अर्थ होने के कारण यहाँ श्लेप अलंकार है।

अर्थालंकार

उपमा ✓ भूमि

समान धर्म के आधार पर जहाँ एक वस्तु की समानता या तुलना किसी दूसरी वस्तु से की जाती है वहाँ उपमा अलंकार माना जाता है। इसके चार अंग हैं—

१. उपमेय—वह वर्ण्य विषय, जिसके लिए उपमा की योजना की जाती है, उसे उपमेय कहते हैं।

२. उपमान—जिसकी उपमा दी जाये वह उपमान होता है।

३. साधारण धर्म—उपमेय एवं उपमान के बीच जो भाव, रूप, गुण, क्रिया आदि समान धर्म हो उसे साधारण धर्म कहते हैं।

४. वाचक—उपमेय और उपमान की समानता को प्रकट करने वाले—सा, इव, सम, समान, सों आदि शब्दों को वाचक कहते हैं।

उदाहरणार्थ— हरिपद कोमल कमल से।

इस एक पंक्ति में उपमा के चारों अंग उपस्थित हैं। हरिपद का वर्णन किया जा रहा है, वे उपमेय हैं। उनकी समता कमल से की गयी है अतः कमल उपमान है। कोमलता वाले गुण में ही दोनों के बीच समानता दिखायी गयी है अतः यह साधारण धर्म है तथा 'से' शब्द वाचक है। इस पंक्ति में पूर्णोपमा है क्योंकि इसमें चारों अंग हैं। जहाँ उपमा के चारों अंगों में से कोई अंग लुप्त रहता है, वहाँ लुप्तोपमा होती है।

उपमेय लुप्तोपमा—जहाँ केवल उपमेय लुप्त हो, वहाँ उपमेय लुप्तोपमा अलंकार होता है—यथा,

सांवरे गोरे घन छटा से फिरैं मिथिलेस की बाग थली में।

उपमान लुप्तोपमा—जहाँ उपमान का लोप हो वहाँ उपमानलुप्ता उपमा अलंकार होता है।

सुन्दर नन्दकिसोर सो, जग में मिलै न और।

साधारण धर्म लुप्तोपमा—जहाँ साधारण धर्म का लोप हो वहाँ धर्मलुप्ता उपमा अलंकार होगा।
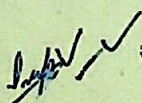
कुन्द इन्दु सम देह उमा रमन करुना अयन।

वाचक लुप्तोपमा—जहाँ वाचक शब्द का लोप हो वहाँ वाचक-लुप्ता उपमा अलंकार होता है।

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।

जहाँ उपमेय का उत्कर्ष दिखाने के हेतु अनेक उपमान एकत्र किये जायें वहाँ मालोपमा अलंकार होता है।

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज हैं।

रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप हो वहाँ रूपक अलंकार होता है।

(१) **सांग रूपक**—जहाँ उपमेय पर उपमान का सर्वांग आरोप हो, वहाँ सांगरूपक होता है।

उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग।
बिकसे सन्त सरोज सब हरखे लोचन भृंग॥

यहाँ रघुवर, मंच, संत, लोचन आदि उपमेयों पर बाल सूर्य, उदयगिरि, सरोज तथा भृंग आदि उपमानों का आरोप किया गया है, अतः यहाँ सांग रूपक है।

(२) **निरंग रूपक**—जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप सर्वांग न हो वहाँ निरंग रूपक होता है।

अवसि चलिय बन राम पहुँ भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोक सिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह॥

यहाँ सिन्धु उपमान का शोक उपमेय में आरोप मात्र है, अतः निरंग रूपक है।

(३) परम्परित रूपक—जहाँ मुख्य रूपक किसी दूसरे रूपक पर अवलंबित हो या जहाँ एक आरोप दूसरे का कारण बनता हुआ दिखाया जाये वहाँ परम्परित रूपक होता है।

बन्दौं पवन कुमार खल बन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सरचाप धर।।

यहाँ हनुमान में जो अग्नि का आरोप प्रदर्शित किया गया है, उसका कारण खलों में वन का आरोप है। अतः इस आरोप पर ही प्रथम आरोप अवलम्बित है।

अनन्वय

जहाँ उपमान के अभाव में उपमेय ही को उपमान मान लिया जाये वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

राम से राम सिया सी सिया
सिर मौर विरंचि विचारि सँवारे।

प्रतीप

जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बना दिया जाये अथवा उसकी व्यर्थता प्रदर्शित की जाय वहाँ प्रतीप अलंकार होता है। जैसे साँवले रंग के शरीर का प्रसिद्ध उपमान यमुना जल है। तुलसीदासजी ने भगवान राम के वनवास जाते समय मार्ग में यमुना स्नान करने के प्रसंग में इस अलंकार का प्रयोग किया है।

उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम।

राम उस जमुना-जल में नहाये जो उनके शरीर के समान साँवले रंग का है। इस प्रकार उपमेय को उपमान बना दिया और उपमान को उपमेय। प्रतीप का अर्थ ही उलटा होता है।

जगप्रकास तुव जस करै वृथा भानु यह देख।

यहाँ पर भी प्रसिद्ध उपमान सूर्य की व्यर्थता प्रतिपादित कर देने से प्रतीप अलंकार है।

संदेह

जहाँ किसी वस्तु की समानता अन्य वस्तु से दिखायी पड़ने से यह निश्चित न हो पाये कि यह वस्तु वही है या कोई अन्य, वहाँ संदेह अलंकार होता है।

लंका-दहन के वर्णन में हनुमान की पूंछ को देखकर यह निश्चित ज्ञान नहीं हो पाता कि यह आकाश में अनेक पुच्छल तारे हैं या पर्वत से अग्नि की नदी सी निकल रही है—

कैधौं व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
कैधौं चली मेरु तें कृसानुसरि भारी है।

संदेह अलंकार का एक और उदाहरण—

नारी बीच सारी है कि सारी बीच नारी है
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।

भ्रांतिमान

संदेह में तो यह संदेह बना रहता है कि यह वस्तु रस्सी है या सर्प है परन्तु भ्रांतिमान में तो अत्यन्त समानता के कारण एक वस्तु को दूसरी समझ लिया जाता है और उसी भूल के अनुसार कार्य भी कर डाला जाता है। यथा—

बिल बिचारि प्रविसन लग्यौ नाग शुंड में व्याल।
ताहू कारी ऊख भ्रम लियो उठाय उताल।।

यहाँ सर्प को हाथी की सूंड़ में बिल होने की भ्रांति हुई और वह उसी भूल के अनुसार क्रिया भी कर बैठा, उसमें घुसने लगा। उधर हाथी को भी सर्प में काले गन्ने की भ्रांति हुई और उसने तत्काल उसे गन्ना समझ कर उठा लिया।

८ उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाये वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं :-

१. वस्तूत्प्रेक्षा २. हेतूत्प्रेक्षा ३. फलोत्प्रेक्षा

वस्तूत्प्रेक्षा—जहाँ किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की सम्भावना की जाती है वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा होती है। यथा—

सखि सोहति गोपाल के उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनो पिये दावानल की ज्वाल।।

गुंजन की माल उपमेय में दावानल ज्वाल उपमान की संभावना की गयी है।

हेतूत्प्रेक्षा—जहाँ अहेतु में अर्थात जो कारण न हो, उसमें हेतु की संभावना की जाय वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। यथा—

रवि अभाव लखि रैनि में दिन लखि चन्द्र विहीन।
सतत उदित इहि हेतु जनु यश प्रताप मुख कीन॥

राजा के यश प्रताप के सतत देदीप्यमान होने का हेतु रात्रि में सूर्य का और दिन में चन्द्र का अभाव बताया गया है अतः अहेतु में हेतु की संभावना की गयी है।

फलोत्प्रेक्षा—जहाँ अफल में फल की संभावना की गयी हो, वहाँ फलोत्प्रेक्षा होती है। यथा—

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये॥

यहाँ तमालों को झुके हुए होने का पवित्र जमुना जल स्पर्श का पुण्यलाभ प्राप्त करना फल या उद्देश्य बताया गया है। यहाँ अफल को फल मान लेने के कारण फलोत्प्रेक्षा है।

दृष्टान्त

जहाँ उपमेय व उपमान के साधारण धर्म में भिन्नता होते हुए भी बिम्ब प्रति-विम्बभाव से कथन किया जाय वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़ै दुख द्वन्द।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चन्द॥

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी वस्तु की इतनी अधिक प्रशंसा की जाये कि लोकमर्यादा का अति-क्रमण हो जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

अब जीवन की है कपि आस न कोय।
कनगुरिया की मुदरी कँगना होय॥

यहाँ शरीर की क्षीणता को व्यंजित करने के लिये अँगूठी को कंगन होना बताया गया है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

टिप्पणियाँ

आवश्यक सन्दर्भ, शब्दार्थ, भावार्थ एवं अन्तःकथाएँ

सन्त कबीर

साखी—अनुभूति से साक्षात्कृत सत्य को प्रकट करने वाली उक्ति को साखी कहते हैं। इसके मूल में 'साक्षी' शब्द है। 'साखी' में शिक्षा या उपदेश का भाव भी निहित है।

साखी

१. द्योहाड़ी कै बार=प्रतिदिन कितने ही बार······बेला (आपकी बलिहारी है)। बार=देरी।

३. दीपक दीया······हट्ट—रूपक। विसाहुणाँ=क्रय-विक्रय; जन्म-मरण से हमेशा के लिये छूटने की व्यंजना।

४. भेरा=बेड़ा (नाव)।

७. जाके संग······लागि—अज्ञान के कारण जीव ब्रह्म से विछुड़ गया है, ज्ञान प्राप्त करके उसी के साथ पुनः लगने की प्रेरणा है।

१३. सुन्नि सिषर=शून्य शिखर, सुषुम्ना नाड़ी का ऊपरी भाग।

१४. पाणी ही तै······कहा न जाइ—जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में केवल उपाधि मात्र का अन्तर होता है, कोई सच्चा परिवर्तन नहीं होता। मुक्ति में भी कोई नयी उपलब्धि नहीं है, यथास्थिति है।

१५. पंखि=कुण्डलिनी अथवा जीवात्मा का प्रतीक। पंखि उड़ाणीं······यहु देस—कुण्डलिनी शून्य शिखर पर पहुँच गयी। वहाँ पर जीव ने अमृत सरोवर का जल पिया। उस दशा में जीव का देहाध्यास नहीं रहा। साधना के द्वारा ब्रह्मानन्द प्राप्ति का संदेश है।

१८. पाका कलस=ज्ञानी के शरीर का प्रतीक।

१९. बूंद समानी समद मैं=जीव का ब्रह्म में लय।

पदावली

१. **दुलहनीं गावहु**..........—रहस्यवादी भावना का पद है। इस पद में प्रेम के द्वारा जीवात्मा के परमात्मा से मिलन का वर्णन है। **जोबन मैमाती**....... —प्रेम करने की योग्यता की प्राप्ति तथा आकांक्षाकी परिपक्वता की व्यंजना। **सरीर सरोवर**—रूपक।

२. **बहुत दिनन थें** ....**राम मोहिं दीन्हाँ**—प्रेमी रूप में भगवान के अनुग्रह की व्यंजना।

३. **संतो भाई आई ग्यान की आँधी**.......—अज्ञान-नाश का रूपक के माध्यम से वर्णन।

४. **पंडित बाद बदंते झूठा**.......—ज्ञान के शब्दों के व्यवहार मात्र से नहीं अपितु तत्व-साक्षात्कार से काम चलता है।

५. **हम न मरैं**....—जीव शाश्वत है और जगत नश्वर; अज्ञानी मरता है अर्थात उसे ही मरने की प्रतीति होती है ज्ञानी को नहीं।

६. **काहे री नलनीं**......— जीवात्मा का ताप और दुःख से तीनों कालों में कोई सम्बन्ध नहीं है। उसको दुःख और ताप की अनुभूति केवल भ्रमजनित है।

मलिक मुहम्मद जायसी

नागमती-वियोग वर्णन—

यह खण्ड बारहमासा की पद्धति में परम्परागत प्रेम की विरह-भावना का मर्मस्पर्शी चित्र है। इसमें प्रकृति और नागमती में कहीं तो बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, कहीं प्रकृति में नागमती के साथ सहानुभूति है और कुछ स्थलों में प्रकृति की भी तटस्थता और उदासीनता के कारण विरहिणी की असहाय अवस्था की मर्मभेदिनी व्यंजना है।

हंस=प्राण, जीव। **पलुहंत**=हरे-भरे होते हैं। **गारौ**=गौरव। **भरनि**= खेत में पानी भर जाना। **ओरी**=छप्पर के आगे का निकला हुआ भाग। **झूमक**=विशेष प्रकार का लोक-गीत। **चीर रचे**=चीरों को रंग लिया है। **चांचरि**=होली का स्वांग, हुड़दंग। **दीठि-दवँगरा**=दृष्टि रूपी वर्षा की झड़ी। **सरवर** ....**मेरवहु एका**=रूपक अलंकार। **साँठि**=गाँठ का धन।

अन्तःकथा—

वामन—वामन भगवान विष्णु के अवतार हैं। उनका शरीर बावन अंगुल का था। उन्होंने राजा बलि से तीन पग धरती माँगी थी। उन्होंने तीन पगों से सम्पूर्ण धरती और बलि का शरीर भी नाप लिया था। इसी छल की ओर संकेत है।

कर्ण—कर्ण कुन्ती के पुत्र थे और अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध थे । इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धर कर कर्ण से उसका कवच और कुण्डल दान में ले लिये थे । इससे वह शक्तिहीन हो गया था ।

जालंधर नाथ=कहा जाता है कि जालंधर नाथ गोपीचंद की माता मैनावती के गुरु थे । वे ही गोपीचंद को पत्नियों से विरक्त करके अपने साथ ले गये थे ।

अकरूर=अक्रूर, अलोपी=आलुप्त ।

सूरदास

१. पारधि=बहेलिया । सचान=बाज पक्षी । डाल पर बैठे पक्षी की, जिसके ऊपर-नीचे दोनों ओर काल मुंह बाये खड़ा है, प्रभु ने क्षण भर में स्मरण करते ही रक्षा कर ली और उसके दोनों शत्रु पल भर में नष्ट हो गये ।

२. अंबुज=कमल ।

३. बदन=मुख । बिधु=चन्द्रमा । मेचक=श्याम रंग । फरनि=फलों से । बालकृष्ण के कायिक सौन्दर्य पर सूर की उक्ति है । समस्त उपमान कृष्ण के अंग-प्रत्यंग, उपमेयों से छवि में परास्त होकर जिसे जहाँ स्थान मिला वहाँ भागे । भुजंग भुजाओं से हार कर विवरों (बिलों) में, कमल नेत्रों से हार कर पानी में, चन्द्रमा मुख से हार कर आकाश में जाकर रहने लगे और अन्य उपमान तो डर कर छिप गये ।

४. तमाल=काले पत्तो का पौधा । बिम्ब=कुँदूरू, लाल फल । कीर=तोता । विद्रुम=मूंगा ।

५. बीथिनि=गलियों, पगडंडियों में । तक्र=मट्ठा, छाछ । वियोग वर्णन है । गोपियों को कृष्ण के ध्यान से तन-मन की सुधि-बुधि नहीं रहती । वे दही बेचने जाती हैं परन्तु मन से कृष्ण का चिन्तन करते-करते इतनी आत्मविस्मृत हो जाती हैं कि उनके मुख से "दही ले, दही ले" के स्थान पर "कृष्ण ले, गोपाल ले" निकलने लगता है और उन्हें इसका भान तक नहीं होता ।

७. पौढ़ति=लेटती है ।

८. हितू=मित्र, शुभचिन्तक। छगन मगन=छुन्ने मुन्ने। मधुपुरी=मथुरानगरी। अक्रूरजी सुफलक के पुत्र थे। कंस के भेजे हुए कृष्ण बलराम को मथुरा अपने साथ लिवा जाने हेतु नन्दजी के यहाँ आये थे।

९. हंससुता=सूर्य की पुत्री यमुना जी। कगरी=कगारों के बीच की हरी-भरी घाटियाँ। सुरभी=गाय। खरिक=गौओं के रहने के बाड़े। मुक्ताहल=मोती।

१०. घनसार=कपूर। सजीवन=शीतल व सुगन्धित लेप। दधिसुत=चन्द्रमा। छुंजें=क्षीण होना, प्रतीक्षा में मार्ग देखते-देखते आँखों की ज्योति क्षीण हो गयी है।

११. जकरी=बकती है। चकरी=बच्चों के खेल की चकई जो घूमती रहती है। हारिल या हाड़िल एक पक्षी है जिसके संबंध में कहा जाता है कि वह पृथ्वी पर कभी बैठता ही नहीं। "हारिल त्यागि दई धरती पुनि पगु न धर्‌यो धरनी के माँहीं।" वह सदा वृक्ष पर ही रहता है और जीवन भर लकड़ी का साथ क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ता। पानी पीने के लिए वृक्ष से चोंच द्वारा तोड़कर लायी हुई किसी सूखी लकड़ी पर बैठ कर तृषा शान्त करता है।

गोपियाँ कहती हैं, हे उद्धव कृष्ण हम हारिल की लकड़ी के समान कभी न त्याग किये जाने योग्य हैं एतदर्थ उनके त्याग और ब्रह्म के ग्रहण का तुम्हारा उपदेश निरर्थक है।

१२. मधुकर=भौंरा, यहाँ उद्धवजी से आशय है।

१३. सचु=शान्ति, सुख। ताँवरो=आँखों सामने अँधेरा, चक्कर आना। व्याल=सर्प। केहरि=सिंह।

विशेष—गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम कृष्ण से कहना कि तुम्हारी उपस्थिति में राधा के अंग-प्रत्यंगकी छबि से लज्जित होकर जो प्राणी भाग गये थे, वे अब तुम्हारा सन्देश सुनते ही राधा के उन अंगों के मुरझाते ही फिर से अपने को राधा के उन अंगों से अच्छे हो जाने के हर्ष से प्रफुल्लित होकर विचरण करने लगे हैं। हे उद्धव! कृष्ण से कहना कि तुम आओगे या राधा के इन बैरियों का मनभाया ही करते रहोगे।

१६. यह कूट पद का उदाहरण है। मंदिर अरध =आधा घर, पाख और पक्ष भी पन्द्रह दिन का पखवारा कहलाता है। हरि अहार=सिंह का भोजन मांस तथा मास, तीस दिन का महीना भी। मघ पंचक=मघा नक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र। चित्रा=चित्त या मन। नक्षत्र २७,वेद ४ और ग्रह ९; सब जोड़ने पर ४० हुए, उसका आधा करने पर बीस=बिस या विष।

१७. परेखौ=दुश्चिन्ता युक्त विस्मय।

१८. कुलाल=कुम्भकार, कुम्हार।

१९. ठाले=व्यर्थ। व्याध=बहेलिया। पलात=भागते। मीनता=मीनत्व या मछली का गुण।

विशेष—इस पद में गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण के वियोग में हमारे नेत्रों ने अपनी सब उपमाएं झुठला दीं, केवल मीन की एकमात्र उपमा ही उपयुक्त रह गयी है क्योंकि ये पल भर को भी जल का साथ नहीं छोड़तीं, अश्रु जल से पृथक नहीं होतीं।

२०. रूप रस राँची=रूप का रस पीते रहने की अभ्यस्त। झूखीं=दुखी हुईं। बारक=एक बार। पतूखी=पत्तों से बनी दोनियाँ (जिनमें कृष्ण गाय दुह कर वन में दूध पी लिया करते थे।)

गोस्वामी तुलसीदास

भरत-महिमा (रामचरितमानस)

तरुन तरनिहि=मध्याह्न के सूर्य को। घटजोनी=अगस्त्यजी। छोनी=पृथ्वी। मसक=मच्छर। परपंचु=दृश्यमान जगत्। पय=दूध। विबुध=देवता। नियोगा=आज्ञा। अनत=दूसरी जगह। अघ=पाप। भाजन=पात्र। गुनत=सोचते हुए। कृत खोरी=की हुई गलती। उताइल पाऊ=पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं। ईति भीति=ईति के भय से दुखी हुई। (अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहों का उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजा की चढ़ाई—खेतों में बाधा देने वाले इन छः उपद्रवों को 'ईति' कहते हैं।) त्रिविध ताप=आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप। भ्राजा=सुशोभित। भट=योद्धा। जम=यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह)। नियम=शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। चाऊ=चाव, उत्साह, आनन्द। भुआलु=राजा। खगहा=गैंडा। करि=हाथी। हरि=सिंह। बराहा=सुअर। महिष=भैंसा। निसान=नगाड़े। सुक=तोते। पिकगन=कोयलों के समूह। जंबु=जामुन। रसाल=आम। पल्लव=पत्ते। अविरल=घनी छाया। आगम निगम=शास्त्र और वेद। सारद=सरस्वती। अचर=जड़। सचर=चेतन। मंदरु बिरहु=विरह मंदराचल पर्वत है। दावा=दाह (जलन)। पाहि नाथ=हे नाथ रक्षा कीजिए। गुदरत=छोड़ते या उपेक्षा करते। चंग खेलारु=पतंग उड़ाने वाला। निषंग=तरकस। बाज सुराग कि गाँडर ताँती=भला गाँडर की ताँत से भी कहीं सुन्दर राग बज सकता है। (तालाबों और झीलों के किनारे एक तरह की घास होती है उसे गाँडर कहते हैं।) भूरि भाय=बड़े ही प्रेम से।

लंकादहन (कवितावली)

बालधी=पूंछ । ज्वाल-जाल=आग का समूह । कैधौं=अथवा । व्योम बीथिका =आकाश रूपी गली में । सुरेस चाप=इन्द्र धनुष । दामिनी कलाप=बिजलियों का समूह । कृसानु-सरि=अग्नि की सरिता । जातुधान=राक्षस । खोरि-खोरि=गली-गली से । चख=आँख । अगार=घर ।

गीतावली—

२. मातु मते महँ=माता के मत में सहमत होऊँ । सुचि सपथनि=आज शपथ खाने से मैं कैसे निर्दोष हो सकता हूँ । खल बच विसिखन बाँची=दुष्टों के वाग्बाणों से विद्ध हुए बिना बची है । रसना=जीभ । ३. साखामृग=वानर । हौं पुनि अनुज संघाती =और मैं भैया लक्ष्मण का साथ पकड़ूँगा । ४. सुभट सों=विपक्षी योद्धा मेघनाथ से । भगति बरे हैं=भक्ति को स्वीकार किया है । अंब=माता सुमित्रा । अंबक-अंबु=नेत्रों में जल भरकर (अश्रुपूरित नेत्र) । रिपुसूदन=शत्रुघ्न । पंत पूरे जनु बिधिवस सुढर ढरे हैं=मानों दैवयोग से उनके पूरे-पूरे दाँव पड़ गये हों । गलानि गरे=ग्लानि ग्रस्त । ५. कीरै=तोता । पाठ अरथ चरचा कीरै=जैसे तोते से कोई पाठ के अर्थ की चर्चा करे । छति लाहु=हानि-लाभ । खीरै नीरै=दूध और पानी ।

दोहावली

१. पसारहिं=फैलाते हैं । मीत=मित्र । परमारथ=जीव के परम लक्ष्य मोक्ष के लिए ।

२. फबैं=शोभा देते हैं ।

३. जाचत=याचना करता है । माँगनेहिं=याचक, भिखारी ।

४. मराली=हंस जैसी । छीर-नीर=दूध-पानी । बिबरन=विवेचन । बक=बगुला । उघरत=भेद खुल जाता है ।

६. भेषज=औषधि ।

८. करषत=कर्षण, खींचना ।

९. बेगिहीं=शीघ्र ही ।

१० दादुर=मेढक ।

विनयपत्रिका

१. **काहूसों कछु न चहौंगो**=किसी से चाहे जो हो, मनुष्य या देवता या इतरयोनि, कुछ भी नहीं चाहूँगा। **मन क्रम वचन नेम निबहौंगो**=मन, वचन और कर्म से यम-नियमों का पालन करूँगा। (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान–ये दस यम नियम हैं।) **परुष**=कठोर। **तेहि पावक न दहौंगो**=उससे उत्पन्न हुई क्रोध की आग में नहीं जलूंगा। **परि-हरि**=छोड़कर। **अविचल**=अडिग, अचंचल।

२. **चातक**=पपीहा। **तृषित**=प्यासा। **गच-काँच**=फर्श के शीशे में। **सेन**=बाज पक्षी। **छति**=हानि। **बिसारि**=भूलकर।

३. **मृषा**=मिथ्या। **भासै**=प्रतीत होता है। **सुमृति**=स्मृति।

४. **भवनिसा**=ससार रूपी रात्रि। **न डसैहौं**=माया का बिछौना नहीं बिछाऊँगा। अर्थात अब असार माया के बन्धन में नहीं बँधूंगा। **चिन्तामनि**=चिन्तामणि; समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली एक विशिष्ट मणि। **उर-कर**=हृदय रूपी हाथ से। **खसैहौं**=गिराऊँगा। **कसौटी**=एक विशेष काले पत्थर का नाम है जिस पर सोना कसकर उसकी शुद्धता की परीक्षा की जाती है। **कसैहौं**=कसकर निर्विकार विशुद्ध बनाऊँगा। **पन**=प्रण। **बसैहौं**=बसने के लिए बाध्य कर दूंगा।

केशवदास

खण्ड परस=महादेवजी। **कोदंड**=धनुष। **धर**=धरा, पृथ्वी। **बरिबंड**=प्रलय। **अवली**=पंक्ति। **गजदंतमयी**=हाथियों के दाँतों से बने हुए मंच। **सुधाधरमण्डल**=चन्द्रमा के आस-पास बनने वाला घेरा। **जोन्हाई**=ज्योत्स्ना से। **देवन स्यों**=देवताओं सहित। **अलंकार**–उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा। **मणि पन्नग**=बड़े-बड़े सर्प, शेष, वासुकि आदि। **पितृ**=पितृलोक निवासी। **ज्योतिवंत**=प्रतापी (चन्द्र, सूर्य आदि)। **अंगी**=शरीरी। **अनंगी**=अशरीरी। **विश्वरूप**=विश्वभर के रूपधारी लोग। **बीस बिसे**=बीस बिस्वा, पूर्णरूप से। **घनश्याम**=(१) रामचन्द्र (२) काले बादल। **बिहाने**=प्रातःकाल। **तरुपुण्य पुराने**=पूर्व पुण्यरूपी वृक्ष। **अलंकार**=रूपक। **ऋषि**=याज्ञवल्क्य ऋषि। **राजहिं लीने**=राजा जनक को साथ लिये हुए। **प्रवीने**=पुरोहित कार्य में कुशल। **दुवौ**=राजा जनक और सतानन्द। **शीरषबासु**=सिर सूंघकर। **कीरतिबेलि**=यशरूपी लता। **बयी**=बोया। **दान-कृपान-विधानन**=दान के विधान से अर्थात दान देकर। **कृपान-विधानन**=

युद्ध के। अंग छः=वेद के छः अंग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद। सातक=राज्य के सात अंग—राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग, सेना। आठक=योग के आठ अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। वेदत्रयी =ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद। शुभ योगमयी है=सुन्दर तथा अच्छा मेल हुआ है। अलंकार–रूपक। वर्ण=रंग, जाति। उत्तमवर्ण=वर्ण से उत्तम अर्थात ब्राह्मण। विश्वामित्र तप करके क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे। उदोत=अभ्युदय। बिजना=व्यजन, पंखा। बात =हवा। तमतेज=घना अंधकार। भवभूषण=१–शंकर के शरीर की विभूति अर्थात राख, २–सांसारिक आभूषण। मसी=कालिख। देव अदेवन को=देवताओं और दानवों अर्थात सभी का। छुब्धि=पृथ्वी। भूपति=राजा, पृथ्वी का पति। भूतन=पृथ्वी के शरीर से। विदेहन=जीवन-मुक्त। भूषण को भवि भूषण=भूषणों के लिए भी भव्य भूषण, अलंकारों को भी अलंकृत करने वाली। अलंकार–विरोधाभास। कमलापति=विष्णु। बिमलापति=ब्रह्मा। दानिन के शील=दानियों में श्रेष्ठ। परदान के प्रहारी दिन= (विरोध परिहार पक्ष में) प्रतिदिन शत्रुओं से दण्ड के रूप में दान लेने वाले। दानवारि= विष्णु। निदान=अंततः। पृथु सम=पुराण–प्रसिद्ध राजा पृथु के समान। कंद= बादल। सुरपालक=इन्द्र। परदार=लक्ष्मी। अलंकार–विरोधाभास, उपमा, अनुप्रास। चंद्रचूड़=महादेवजी। पन्नग प्रचंड पति प्रभु=प्रचण्ड पन्नगों (सर्पों) का स्वामी (राजा) वासुकि। पनच=प्रत्यंचा। पीन=पुष्ट, मोटी। पर्वतारि=इन्द्र। पर्वत प्रभा=दैत्य। विनायक=गणेश। पिनाक=धनुष। अलंकार—व्यतिरेक, अनुप्रास। लीलयैव=सहज ही में।

उत्तम गाथ=सर्व प्रशंसित, शिव का वह धनुष। निर्गुण ते गुणवंत कियो=प्रत्यंचा रहित स्थिति (अन्य राजा प्रत्यंचा नहीं चढ़ा पाये थे) को गुणवंत किया (अर्थात राम ने प्रत्यंचा चढ़ा दी)। नराच=बाण। अलंकार–रूपक, अनुप्रास। टंकोर=टंकार। चंड कोदंड=कठोर धनुष। मंडि रह्यो=भर गया। नव खण्ड=इला, रमणक, हिरण्य, कुरु, हरि, वृष, किंपुरुष, केतुमाल तथा भारत। अचला=पृथ्वी। घालि=तोड़कर। ईश= महादेव। जगदीश=विष्णु। भृगु नंद=परशुराम। बाधि वर स्वर्ग को=स्वर्ग के वर (श्रेष्ठ) निवासियों के शांत जीवन को बाधा देकर। साधि अपवर्ग को=मोक्ष साधकर (महर्षि दधीचि की हड्डियों से निर्मित शिव धनुष पर राम का हाथ पड़ते ही ऋषि दधीचि को मोक्ष प्राप्त हो गया।)

कविवर बिहारी

१. कुबत=निन्दा (बुरी बात)। त्रिभंगी लाल=श्रीकृष्ण को इसलिए कहते हैं कि वंशीवादन करते समय वे पैरों से, कमर से और गर्दन से तीन स्थानों से तिरछे या टेढ़े हो जाते हैं। कवि यही रूप हृदय में बसाना चाहता है।

२. श्रुति=कान, वेद।

३. धर्‌यो=पकड़ा, अपने अधिकार में किया। समरु=स्मर, कामदेव।
निशान=झण्डा। कामदेव के झंडे पर मकर का चिह्न अंकित है इसीलिए उसे मकरध्वज कहते हैं—जैसे विष्णु को गरुड़ध्वज, शिव को वृषभध्वज और अर्जुन को कपिध्वज कहते हैं।

४. नटि जाय=मना कर देती है।

७. दिया बढ़ाएँ=दीपक बुझा देने पर भी। अमंगल दोष के कारण दिया बुझाना न कहकर दिया बढ़ाना ही कहा जाता है।

८. जल चादर=मध्य युग में जलकुण्डों के भीतर जल की सतह के नीचे जलते दीपों की कतार दिखायी जाती थी। जल चादर के दीपों से उन्हीं से आशय है।

९. ब्यौरति=सुलझाती है। कच=बाल।

११. मीचु=मृत्यु।

१३. मैन=कामदेव।

१७. भलैं=भली भाँति। यहाँ इसका अर्थ बड़ी विलक्षणता से है। अहेरी=शिकारी। मार=कामदेव। काननचारी=(१) कानों तक विचरने वाले अर्थात् दीर्घ। (२) जंगल में विचरने वाले। नागर नरनु=नगर निवासी (सुघर) मनुष्य। अलंकार—श्लेष, रूपक।
सलोने=(१) सुन्दर (२) लवण युक्त। सनेह=स्नेह-(१) प्रीति (२) चिकनाई अर्थात तेल या घी।

१८ सूरन—यह मुंह में कनकनाहट उत्पन्न करता है। इसी को सूरन का मुंह में लगना कहते हैं। लवण तथा घृत में पकाने से इसकी कनकनाहट जाती रहती है। परन्तु यदि यह कुछ भी कच्चा रह जाता है तो मुंह में लगता है। इसको जमींकन्द भी कहते हैं। मुंह लागि=मुंह लग कर (१) धृष्टतापूर्वक झूंठी बातें कह कर (२) मुंह में कनकनाहट उपजा कर। अलंकार—श्लेष।

१९. अनियारे=अनीदार, नुकीले ।

२१. असंगति अलंकार का यह अन्यतम उदाहरण है, कारण कहीं, कार्य कहीं ।

२२. घरहूँ जमाई=ससुराल के घर में बस जाने वाला घर जमाई कहलाता है । पूस मास में जैसे दिन निष्प्रभ व निस्तेज हो जाता है और दिनमान भी घट जाता है, ठीक वही हाल ससुराल में रहने वाले दामाद का भी हो जाता है ।

२३. माह निसि=माघ मास की रात्रि में । लुवै चलति=लू चलती है । जियति बिचारी=समझ लिया कि जीवित है । बाम=स्त्री ।

२४. बौरी=पगली। सीतकर=शीतल किरण वाला ।

महाकवि भूषण

चतुरंग=रथ, हाथी, घोड़े एवं पैदल—इन चारों अंगों से युक्त सेना चतुरंग कही जाती थी । जंग=युद्ध । गैबरन=हाथियों के । खैल-भैल=खलभल । तरनि=सूर्य । पारावार=समुद्र । बाने=ध्वज । नग=पर्वत । निसान=निशान, ध्वज, परन्तु यहाँ डंका के अर्थ में प्रयोग । कुंजर=हाथी । कमठ=कच्छप । कोकबान=एक प्रकार का बाण जिसे चलाते समय विशेष शब्द निकलता है । इन्द्र को अनुज=भगवान विष्णु । दुगध नदीस=क्षीर सागर । सुरसरिता=देवनदी गंगा । रजनीस=चन्द्रमा । गिरीस=शिव । गिरिजा=पार्वती । मयूखैं=किरणें । गयंदन=हाथी । हरहिं=शिव को । करवाल=तलवार । कटक=सेना । किलकि=प्रसन्न होकर । बै संगिनी=वय: संगिनी, आजीवन साथ देने वाली । बीह=बड़े । दारुन=दारुण, भयंकर । दलन=सेना । पर छीने=परक्षीण, परकटे पक्षी, बलक्षीण शत्रु अथवा हाथ-पैर कटे हुए शत्रु सैनिक । बर=बल । पर=शत्रु ।

विविधा

सेनापति

१. बृष=वृष राशि । तचति=तपती है । सीरी=शीतल । नैंक=थोड़ा । पौनौं=पवन (वायु) भी । पकरि=आश्रय लेकर । घामै=घाम, धूप ।

२. सिसिर=शिशिर ऋतु । सरूप=स्वरूप । सविताऊ=सूर्य भी । दुति=कांति । रजनी=रात्रि । छाहँ=छाया । बासर=दिन ।

मतिराम

१. स्रौननि = कानों में । पियूष = पीयूष, अमृत । हाँतो = दूर ।
२. कुंदन = शुद्ध सोना । चितौन = दृष्टि । लहै = प्राप्त करता है । निहारिये = देखिए । खरी = उत्तम ।

देव

१. केकी = मोर । कीर = तोता । करतारी दै = हाथ की ताली बजाकर । महीप = राजा ।
२. आनि = आकर । निगोड़ी = निकृष्ट, नीच ।
३. निरधार = निरालम्ब, बेसहारा ।

घनानन्द

१. नेकु = थोड़ा भी । सयानप = चतुरता । झझकें = झिझकते हैं । आँक = अंक ।
२. वारौं = न्यौछावर करती हूँ । भिजई = भीगी । आवनि = आने का ढंग ।
३. परजन्य = मेघ, बादल । जथारथ = यथार्थ ।

पद्माकर

१. मेह = बादल । नेह = स्नेह, प्रेम । कलिंदी = यमुना । महत = महत्त्वपूर्ण । मवासो = निवास स्थान । सुबासो = सुन्दर निवास ।
२. बेलिन = लताएं । भुंज = जलाना ।
३. कलित = खिला हुआ । पराग = पुष्प-रज ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

२. जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता = नायिका का कथन है कि हे नायक, जो मैं यह कहूँ मत जाओ तो इसमें मेरा तुम्हारे ऊपर प्रभुत्व सिद्ध होगा, जो अनुचित है । पतिआइए विश्वास कीजिएगा ।
५. पल = पलक ।
६. कहर = घोर विपत्ति ।

तरनि तनूजा = सूर्य की पुत्री, यमुना । मुकुर = दर्पण । आतप वारन = गर्मी दूर करने को । राका = पूर्णिमा की रात । बालगुड़ी = बच्चों की पतंग । जुग पच्छ = दोनों पक्ष, कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष । मल्ल = पहलवान । पारावत = कबूतर । कारण्डव = कौड़ीला पक्षी

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

सरस व्रजभाषा में लिखित अपनी प्रसिद्ध रचना 'उद्धव-शतक' में 'रत्नाकर' जी ने गोपियों एवं उद्धव के उत्तर-प्रत्युत्तर के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म का खंडन एवं सगुण ब्रह्म की स्थापना की है। प्रस्तुत छंदों में यहीं विषय प्रतिपादित हुआ है और अन्त में उद्धव भी गोपियों के सगुण ब्रह्म के विचारों एवं उनके प्रेम से प्रभावित हो जाते हैं।

१. मनभावन=मन को परम प्रिय श्रीकृष्ण। झौरि-झौरि=समूह का समूह। पौरि=द्वार। उझकि-उझकि=ऊँचे उठ उठकर। पेखि-पेखि=देख-देख कर। छोहनि=प्रेम से। छबै=छविमान।

२. स्ववस=अपने अधीन। सँजोग=मिलन। विलस्यौ=आनन्दित, लीन। हिय-कंज=हृदय कमल (योगी ब्रह्म को हृदय-कमल में जलती हुई ज्योति के रूप में देखता है)। जड़-चेतन-बिलास=प्रकृति और ब्रह्म की क्रीड़ा का आनन्द। छोहि=प्रेम में क्षुब्ध होकर।

३. अकह=अकथनीय। थहरानी=काँप गयी। थानहिं=अपने स्थान पर ही। थिरानी=निश्चेष्ट होकर स्थिर हो गयी। रिसानी=क्रुद्ध हुई। बिथकानी=थकित, शिथिल। सेद=पसीना। मुरझानी=मूर्छित। सहमि=डरकर।

४. कैधौं=अथवा। अनारी=अनाड़ी, अज्ञानी। अन्यारी=एकता, अभेदत्व। बारिधिता=समुद्र का अपना स्वरूप, विशालता। बिलैहै=विलीन या नष्ट हो जायेगी।

५. चिन्तामनि=समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली एक मणि-विशेष। पँवारि=फेंककर। मुकुर=शीशा, दर्पण। सारन=बुझाना। त्रिकुटी=दोनों भौंहों के मध्य नासिका के ऊपर का भाग।

६. बतरावौ=कहो। दरिबै कौं=दलने या नष्ट करने के लिए। बैन-पाहन=वचन रूपी पत्थर।

७. बिबेक=बुद्धि, ज्ञान। रावरी=आपकी। छमा=क्षमा। छमता=क्षमता, शक्ति। ताजन=दण्ड, त्रास। बिचारी=दीन, दुखी। परिचारिका=सेविका।

८. आरति=क्लेश, दुख। साँसुरी=साँसे। मयूर-पच्छ=मोर पंख। गुंज-अंजली=घुँघुंचियों से भरी अँजुली। उमाहै=उमड़ा हुआ। सजाव=अच्छा जमा हुआ। मही=मट्ठा। दलकति पाँसुरी=धड़कती हुई छाती। कीरति कुमारी=कीर्ति की पुत्री राधा।

९. छाके=छककर पिये हुए । थाके=थकित । चकात=चकित भाव से । सुधिग्रात= स्मरण करते । सारत=पोंछता है । बहोलिनि=कुर्ते की बाँहों से ।

१०. रज=धूल । धाइ=दौड़कर । माते=मत्त, मतवाले । हेरि=देखकर । थरकति=काँपती हुई । थहरि=काँपकर । थिराए=स्थिर करना । सद्य=ताजा । छलकनि=उमड़न । चाहि=अभिलाषापूर्वक । पुहुमी=पृथ्वी । कौंछि=गोद ।

११. छावते=छा लेते, बना लेते । रम्य=सुन्दर । रौन-रेती=रमणीय रेतीली भूमि । बिहाइ=छोड़कर । स्रौन रसना=कान और जिह्वा । लेखि=देखकर । प्रलयागम= प्रलय आ जाना । चाव=उमंग, इच्छा । चितावन=सावधान करना या सजग करना ।

गंगावतरण

'गंगावतरण' खण्ड काव्य में 'रत्नाकर' जी ने सगर-पुत्रों के उद्धार के लिए महाराजा भगीरथ की तपस्या के परिणामस्वरूप गंगा के पृथ्वी पर आगमन का वर्णन किया है । प्रस्तुत छंदों में गंगा के आकाश से पृथ्वी की ओर तीव्र वेग से आने एवं शिवजी की जटाओं में धारण किये जाने का काव्यमय चित्रण हुआ है ।

१. उमंडि=उमड़कर । खंडति=खंडित करती हुई । विहंडति=विखंडित करती हुई, चीरती हुई । तरजे=भयभीत हुए । महामेघ=प्रलय के बादल ।

२. दरेर=धक्का, रगड़ । धुधकारि=घोर शब्द करती हुई । कावा=चक्कर ।

३. स्वाति-घटा=स्वाति नक्षत्र के बादलों का समूह । मुक्ति-पानिप=मोती की कांति । रूरी=सुन्दर । जल-ब्यालनि=जल में रहने वाले सर्प । चल=चंचल । चपला=बिजली ।

४. वितान=चँदोवा । विस्तर=विस्तृत । सुर बनितनि=देवताओं की स्त्रियाँ, अप्सराएँ । वृंद=समूह ।

५. जोजन=योजन, चार कोस की नाप । उसावत=हवा में उड़ाकर भूसे से अन्न अलग करता है ।

६. सुरपुर=स्वर्ग । निसैनी=सीढ़ी । ओजनि=तेज से ।

७. आनहि के=अन्य के । चोप=उमंग । चिकनाई=प्रेम का चिकनापन, प्रेम माधुरी ।

८. सुजान=चतुर । बाम=पत्नी, नारी । ऐंचति=सिकोड़ती हुई ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

पवन-दूतिका

संस्कृत साहित्य के मेघदूत, हंसदूत आदि की प्रणाली पर हरिऔधजी ने भी अपने प्रिय-प्रवास में वियोगिनी राधा से पवन को दूती बनाकर कृष्ण के पास सन्देश भिजवाया है। कवि द्वारा चित्रित राधा के विरह-कातरा रूप से कहीं बढ़कर परदुःखकातरा स्वरूप विशेष दृष्टव्य है। लोक-सेविका राधा की उदात्त भावनाएँ उनके चरित्र को नवीनता प्रदान करती हैं।

वातायनों=झरोखों। मुह्यमाना=मोहित। क्लान्त=दुखी, थका हुआ। तप्तभूतांगना=गर्मी से सतायी स्त्री। अर्क=सूर्य। कलभकर=हाथी की सूँड़। अंभोज-नेत्रा = कमल जैसे नयनों वाली। नीप=कदम्ब। प्रोषिता=प्रोषितपतिका नायिका अर्थात विरहिणी।

मैथिलीशरण गुप्त

कैकेयी का अनुताप

गुप्तजी ने 'साकेत' के इस स्थल में कैकेयी की उस आत्म-ग्लानि और अनुताप को व्यक्त किया है जिसकी आधारशिला भरत के चरित्र के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं राम तथा भरत दोनों के प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य है।

नीले वितान=नीला आकाश। कुहकिनि=कोयल, जादूगरनी।

निरख सखी···—यह उर्मिला का विरह गीत है, खंजन के आगमन से शरदागम की व्यंजना है। शरद के आतप में प्रियतम के तन की कान्ति आदि के दर्शन उर्मिला को प्रियतम मिलन का आनन्द दे रहे हैं। यह भावात्मक एवं काल्पनिक मिलन विरह व्यथा का उद्दीपन बन जाता है।

खंजन=पक्षी विशेष, नेत्र के उपमान, शरद के सूचक।

फैला····आतप—शरद की कोमल धूप में लक्ष्मण के शरीर की कान्ति देखना। प्रेम की ऊष्मता एवं लक्ष्मण के गौर वर्ण की व्यंजना।

मन से······ सर साये—मन के प्रेम तरंगों से पूर्ण होने की व्यंजना।

हंस—उल्लास का प्रतीक।

फूल उठे हैं कमल=हृदय-कमल का खिलना।

शिशिर न फिर गिरि वन में······—इस गीत में उर्मिला शिशिर के कष्ट-दायक प्रभाव से प्रियतम को मुक्त रखने की आकांक्षा से अनुप्राणित होकर अपने शरीर से उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति का आश्वासन दे रही है।

जयशंकर 'प्रसाद'

अरुण यह मधुमय देश हमारा······—यह चन्द्रगुप्त नाटक से उद्धृत स्वदेशा-नुराग का गीत है। इसमें भारत के वाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य के समन्वित रूप का चित्रण है। वसन्त के मनोरम प्रभात की प्राकृतिक शोभा की पृष्ठभूमि में राष्ट्र के गौरव का गान किया गया है।

अरुण=इस शब्द में बड़ी व्यापक व्यंजना है। सभ्यता का सूर्य जहाँ सर्वप्रथम उदित हुआ था, उसका संकेत है।

जहाँ····**सहारा**—सीमाहीन क्षितिज को सहारा मिलने से देश के भौगोलिक विस्तार तथा अपरिचित को आश्रय मिलने से हृदय की विशालता व्यंजित है।

तामरस····**गर्भ विभा पर**—कमल की भीतरी तालिका के समान प्रातःकालीन लालिमा से भरकर, यहाँ रागात्मकता की व्यंजना है।

नाच रही······**मनोहर**—व्यापक उल्लास की व्यंजना।

जीवन हरियाली=जीवन की समृद्धि। **मंगल कुंकुम**=मंगल भावना का सौन्दर्य।

उड़ते······**प्यारा**=शरण के हर अधिकारी को आश्रय मिलता है।

बरसाती······**किनारा**—इन आँखों के करुणा के आँसू हैं, जिस हृदय साग. से इन आँसुओं के बादल उठते हैं वह करुणा का सागर है। अनन्त देशों और उनके अधि-वासियों को यहाँ से करुणा का संदेश मिलता है।

हेम-कुम्भ ले······**सुख मेरे**—ऊषा की लाली में अपने सुखों के दर्शन से देश के साथ तादात्म्य की अनुभूति है।

मदिर······**तारा**=चिन्ता रूप तारे सब डूबने लगते हैं।

बीती विभावरी······—यह गीत लहर से लिया गया है। प्रातःकाल की रमणीय सुषमा का सजीव चित्र प्रस्तुत करने वाला यह जागरण गीत है, इसमें उद्बोधन की ध्वनि है।

विभावरी=रात । अंबर पनघट—रूपक, ताराघट—रूपक, ऊषानागरी—रूपक । नवल रस=जीवन के असीम उल्लास की प्रेरणा । मलयज=सुगन्धित पवन । विहाग=आधीरात के बाद गायी जाने वाली रागिनी, खुमारी ।

'आँसू'—लौकिक प्रेम का विरह काव्य है । इसमें प्रेम और विरह की भावना आध्यात्मिक ऊँचाई का स्पर्श करती है । संकलित अंश में विरह-व्यथा की मार्मिक कथा है ।

मानस-सागर······घातें—रूपक, मानवीकरण अलंकार ।

प्रतिध्वनि मेरी=प्रतिध्वनि का मानवीकरण । कवि प्राकृतिक वस्तुओं अथवा व्यापारों पर मानवीय भावनाओं का आरोप करते हैं । इसी को मानवीकरण कहते हैं । इससे रचना की मर्मस्पर्शता बढ़ जाती है ।

महामिलन=आध्यात्मिक प्रेम का संकेत ।

श्रद्धा-मनु······—प्रसादजी ने 'कामायनी' में देव संस्कृति के विनाश के बाद विकसित होने वाली मानव संस्कृति एवं मानवता के विकास की मनोवैज्ञानिक कहानी प्रस्तुत की है । यह विकास श्रद्धा और मनु के योग से हुआ है । प्रस्तुत स्थल श्रद्धा और मनु के प्रथम दर्शन एवं परस्पर के सहज आकर्षण के वर्णन से आरम्भ होता है । इसमें [illegible]द्धा के रूप तथा शील का चित्रण है । अन्तिम भाग में श्रद्धा मनु को अर्थात मानव को कां[illegible]न का सन्देश दे रही है ।

भर[illegible]

कौन तुम······अभिषेक—सांग रूपक ।

मधुर······आलस्य—इन पंक्तियों में मूर्त पर अमूर्त का आरोप है, अतः [illegible]चार-वक्रता है । कविता में विशेष भाव-सौन्दर्य लाने के लिए कवि मूर्त को अमूर्त बना देता है ।

प्रथम कवि······सुन्दर छंद=वाल्मीकि का श्लोक'····मा निषाद प्रतिष्ठां'···की ओर संकेत । आदि कवि तमसा नदी में स्नान करने जा रहे थे । मार्ग में उन्होंने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को व्याध के द्वारा मारा जाते हुए देखा । उनकी करुणा जाग उठी और उनका शोक सुन्दर श्लोक में परिणत हो गया ।

कुसुम वैभव में लता समान—उपमा ।

चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम—रूपक ।

खिला हो······गुलाबी रंग—उत्प्रेक्षा से गर्भित रूपक ।

अभिनव मनुष्य—

कुरुक्षेत्र के अन्तिम सर्ग से उद्धृत इस रचना में आधुनिक मनुष्य की भौतिक उन्नति की विडम्बना की ओर संकेत किया गया है जो हार्दिक और आध्यात्मिक विकास के अभाव में अभिशाप बन गयी है। नित्य नूतनता का लोभी यह अभिनव मनुष्य यह नहीं समझ पाया है कि पड़ोसी के दुख-दर्द से अछूता और दूर रहकर अज्ञात ग्रह-नक्षत्रों की खोज और यात्रा व्यर्थ है। धरती पर रहना तथा धरती के मनुष्यों को आत्मीयता के घेरे में समेट लेना ही अभिनव मनुष्य की वास्तविक जय यात्रा है।

अवधार्य=धारण कर, स्वीकार कर। शब्दगुण=शब्द को ग्रहण करना ही जिसका गुण है। दिक्काल=दिशा और समय। गुह्यतम=अत्यंत गुप्त, रहस्यमय। सुपरीक्षिता=भली प्रकार देखी-भाली, परखी हुई। लघुहस्तामलक=हाथ पर रखे हुए छोटे आँवले जैसी।

चाँद और कवि—

चाँद और कवि के संवाद में चाँद मनुष्यों की क्षणिक भावुकता और कल्पना-जीवी प्रकृति पर व्यंग्य करता है। कवि की रागिनी आज के नये मनुष्य के स्वप्न की शक्ति और उनको साकार करने की उसकी क्षमता का उल्लेख कर इस व्यंग्य का उत्तर देती है। स्वप्नजीवी मनुष्य की कर्मठता ही तो विश्व का विकास करती है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

मैंने आहुति बनकर देखा—

जीवन केवल सुखों के संचय का नाम नहीं है, बल्कि उसकी वास्तविक शक्ति कष्टों, विघ्न-बाधाओं और विरोधी परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने से ही विकसित होती है।

दुर्धर=कठिन। मरु=मरुस्थल, रेगिस्तान। नंदन=देवताओं का उद्यान। पात्र=योग्य। प्रशस्त=श्रेष्ठ, उत्तम, बड़ा। जनपद=नगर। गतिरोधक=गति में बाधक, रुकावट। अवसाद=विषाद। सम्मोहन=चेतना लुप्त करना। हाला=मदिरा। विदग्ध=विद्वान, रसिक, चतुर। असि=तलवार। निर्मम=कठोर। दुर्निवार=जिसे अलग न किया जा सके, कठिन।